अप्रैल 2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 | अंक – 4 | प्रति – ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

13 आत्मज्ञान–मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि
22 आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के विकास पर भी दें ध्यान
51 सौभाग्य की त्रिवेणी का संवाहक बना विश्वविद्यालय
61 आध्यात्मिकता का आत्मसत्य

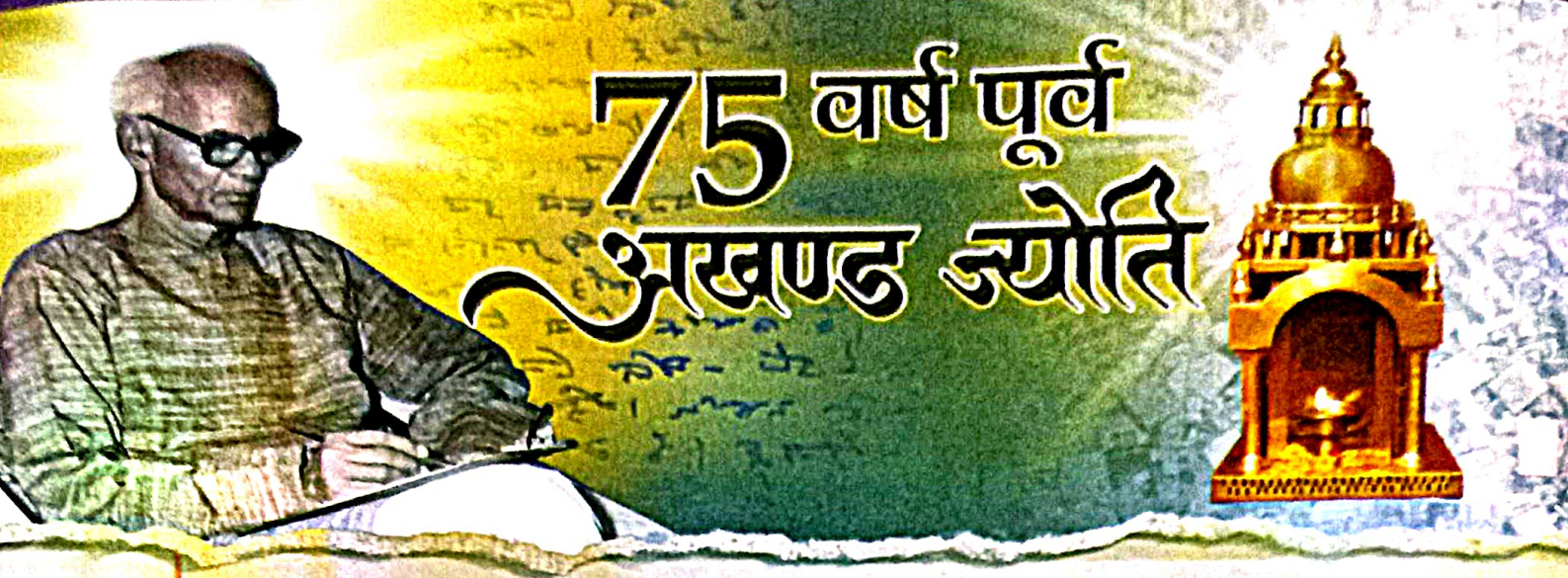

निष्काम भाव से कर्म करते रहिए

वस्तुओं और परिस्थितियों में सुख ढूँढ़ना एक प्रकार की मानसिक मृगतृष्णा है। शरद ऋतु में जब भूमि के क्षार फूलकर ऊपर आ जाते हैं, तो प्यासा मृग उन्हें दूर से पानी समझता है, पर पास जाने पर उसे अपने भ्रम का पता चलता है और अभीष्ट वस्तु न पाकर दुःखी तथा निराश होता है। फिर उसे दूसरी जगह ऐसा ही भ्रम-जल दिखाई पड़ता है, वहाँ भी दौड़ता और निराश होता है। इसी उलझन में पड़ा हुआ वह भारी कष्ट सहता रहता है। यही दशा तृष्णाग्रस्त, लोभी मनुष्यों की होती है। यद्यपि उन्हें भगवान बहुत कुछ देता है, पर उस प्रभु-प्रसाद को प्राप्त करने के सौभाग्य से प्रसन्न होने का अवकाश ही नहीं मिलता, उधर ध्यान ही नहीं जाता, ताकि संतोष अनुभव कर सकें। एक के बाद दूसरी, छोटी के बाद बड़ी तृष्णा आ पड़ने से उसे यही मालूम पड़ता है कि मैं सबसे गरीब दीन-दुःखी एवं अभावग्रस्त हूँ। काश, वह इन तृष्णाओं से मुक्ति पाकर अपनी वर्तमान स्थिति की विशेषताओं और महानताओं को ध्यानपूर्वक देख सका होता तो उसे पता चलता कि प्रभु ने कृपापूर्वक उसे इतना दे रखा है, जिसे प्राप्त करने के लिए इस विश्व के असंख्यों प्राणी तरसते हैं। हमारा जैसा सौभाग्य उन प्राणियों को मिल सका होता तो वे अपने सौभाग्य पर फूले न समाते, उसे स्वर्गीय वैभव अनुभव करते, ईश्वर को अनेक धन्यवाद करते।

(अखण्ड ज्योति, अप्रैल -1951, पृष्ठ- 4)

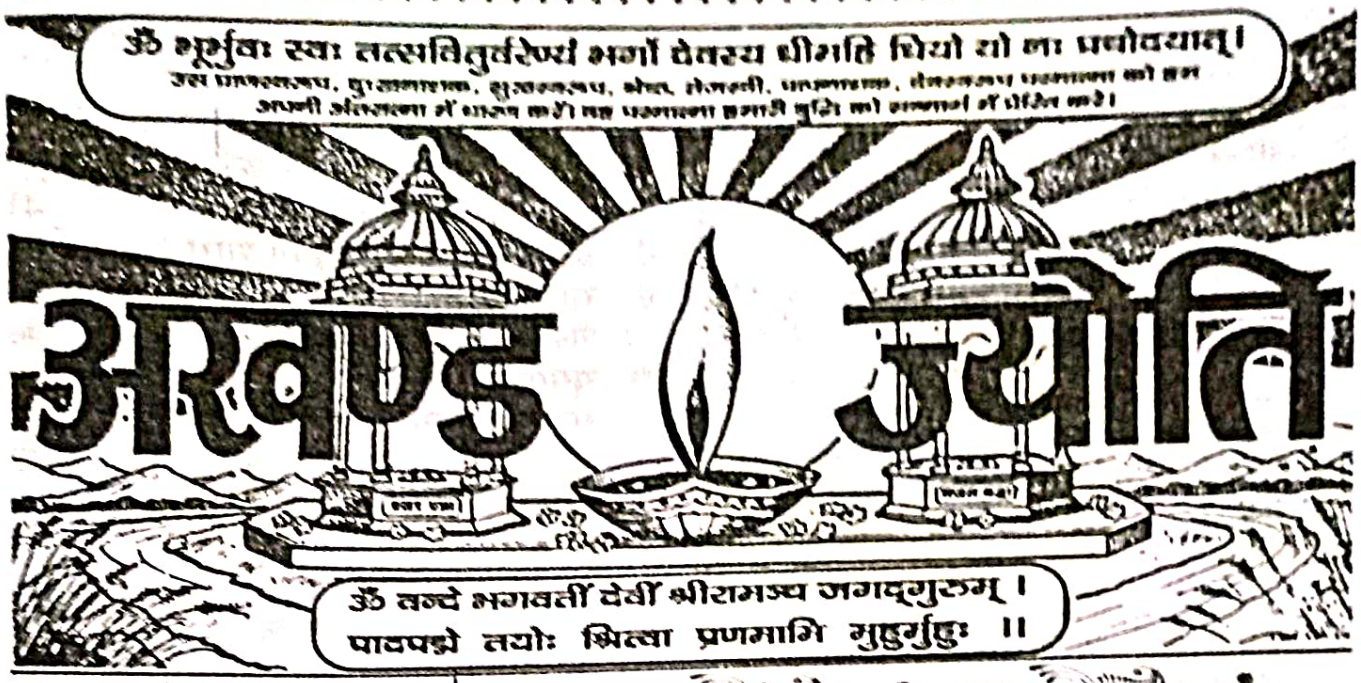

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)

दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मैसेज करें)

वर्ष	:	90
अंक	:	04
अप्रैल	:	2026
चैत्र-वैशाख	:	2083
प्रकाशन तिथि	:	01.03.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

वैज्ञानिक अध्यात्म का ब्रह्मवर्चस

'वैज्ञानिक अध्यात्म का ब्रह्मवर्चस' अपने अदृश्य व दृश्य, दोनों रूपों में साकार हुआ। गायत्री तीर्थ, शांतिकुंज में उन दिनों साधना सत्रों की सघनता थी। वेदमाता गायत्री—गायत्रीसाधकों के अंतर्दर्शन में प्रकट होकर ब्रह्मवर्चस का ज्योतिर्मय आनंद प्रकाशित कर रही थीं। वेदमाता का ब्रह्मविद्या-स्वरूप शांतिकुंज की धरती पर चहुँओर विकीर्ण हो रहा था। शांतिकुंज के आँगन में उस समय स्वर्ग के नंदनकानन से कहीं अधिक सुषमा व सुरभि थी। ब्रह्मविद्या के ब्रह्मवर्चस की इस पावनता में युगऋषि गुरुदेव की समाधि चेतना में वैज्ञानिक अध्यात्म का महामंत्र प्रकाशित हुआ। जब जीवन स्वयं प्रकृति एवं परमात्मा, देह व आत्मा, जड़ व चेतना का सुयोग-संयोग है; तब जीवन के समग्र अनुभव के लिए न केवल अध्यात्म पर्याप्त है और न केवल विज्ञान काफी है। साधना की गहनता में द्रष्टा ने इसके अनेक दृश्यों की झलक पाई। साधना के अदृश्य में दृश्य बनने वाला यह दर्शन-सत्य गंगातट पर ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के रूप में स्थापित हो गया। इसके भूमितल में अध्यात्म का आधारभूत सत्य—वेदमाता गायत्री के 24 रूपों में अपने मंत्र व यंत्र के साथ प्रतिष्ठित हुआ। इसके प्रथम तल पर वैज्ञानिक अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय ने अपना स्वरूप प्राप्त किया। द्वितीय या सर्वोच्च तल, इसमें कार्य करने वाले वैज्ञानिकों का निवास बना। इस तरह वैज्ञानिक अध्यात्म की दृश्य प्रतिष्ठा—'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' में अध्यात्म के आधार पर वैज्ञानिक प्रयोग, विचार-दर्शन एवं वैज्ञानिकों को सम्मिलित बन साकार हुई। ❑

▶ **'नारी सशक्तीकरण' वर्ष** ◀

विषय सूची

❁ आवरण—1 1
❁ आवरण—2 2
❁ वैज्ञानिक अध्यात्म का ब्रह्मवर्चस 3
❁ **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
मानव अपनी मर्यादा को समझे 5
❁ माँ गायत्री की महिमा अपरंपार है 7
❁ प्रार्थना माँगने की नहीं,
स्वयं को बदलने की प्रक्रिया है 10
❁ मामेकं शरणं व्रज 11
❁ आत्मज्ञान—मानव जीवन की
सर्वोच्च उपलब्धि 13
❁ आशा-उत्साह से भरा जीवन 15
❁ अपनी राह चला लो गुरुवर 17
❁ **पर्व विशेष—परशुराम जयंती**
धर्मरक्षक ऋषि परशुराम 19
❁ आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के विकास पर
भी दें ध्यान 22
❁ जीवन में अनावश्यक तनाव न पालें 25
❁ साधना 27
❁ एक योगी का प्रेतात्मा से संवाद 28
❁ जीवन का उत्थान—लक्ष्य बने महान 30
❁ कौओं की घटती संख्या 32
❁ मन को मनाना सीखें 35
❁ जीवन-विद्या का आलोक केंद्र 37
❁ **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—3**
मनोनिरोध के सूत्र 41
❁ **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—205**
शैक्षणिक निर्देशन पर शोध 46
❁ **युगगीता—311**
सफलता-असफलता में समान रहने
वाला करता है सात्त्विक कर्म 49
❁ **विश्वविद्यालय परिसर से—250**
सौभाग्य की त्रिवेणी का
संवाहक बना विश्वविद्यालय 51
❁ **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
पात्रता का विकास (उत्तरार्द्ध) 54
❁ **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
आध्यात्मिकता का आत्मसत्य 61
❁ **अपनों से अपनी बात**
जाग्रत आत्माएँ भावभरे अनुदान
प्रस्तुत करें 64
❁ जन्म शताब्दी माताजी की (कविता) 66
❁ आवरण—3 67
❁ आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

शताब्दी समारोह 2026 : परमवंदनीया माता भगवती देवी शर्मा जी एवं अखंड दीप

अप्रैल-मई, 2026 के पर्व-त्योहार

बुधवार	01 अप्रैल	पूर्णिमा व्रत	शनिवार	25 अप्रैल	जानकी नवमी
गुरुवार	02 अप्रैल	हनुमान जयंती	सोमवार	27 अप्रैल	मोहिनी एकादशी
सोमवार	13 अप्रैल	वैशाखी/वरूथिनी एकादशी	गुरुवार	30 अप्रैल	नृसिंह जयंती
			शुक्रवार	01 मई	बुद्ध पूर्णिमा
मंगलवार	14 अप्रैल	आंबेडकर जयंती	बुधवार	13 मई	अपरा एकादशी
रविवार	19 अप्रैल	परशुराम जयंती	शनिवार	16 मई	वट सावित्री व्रत
सोमवार	20 अप्रैल	अक्षय तृतीया	बुधवार	27 मई	कमला एकादशी 'वै.'
गुरुवार	23 अप्रैल	गंगोत्पत्ति/चित्रगुप्त जयंती	शनिवार	30 मई	पूर्णिमा व्रत

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

मानव अपनी मर्यादा को समझे

जब हम इस विशाल ब्रह्मांड पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमारी पृथ्वी उसकी तुलना में एक अत्यंत सूक्ष्म बिंदु मात्र प्रतीत होती है। फिर भी, इस छोटे-से ग्रह पर जीवन की अद्‌भुत विविधता और समृद्धि विद्यमान है। यह तथ्य अपने आप में विस्मयकारी है कि इतनी सीमित परिधि में चेतना, विचार और भावनाओं का इतना गहन विकास संभव हुआ है।

मनुष्य इस पृथ्वी का सबसे विकसित प्राणी है। उसमें न केवल चेतना और विचार करने की क्षमता है, बल्कि आत्मबोध और विवेक जैसी विशिष्ट शक्तियाँ भी विद्यमान हैं। यदि वह अपनी सीमाओं को समझकर, मर्यादित जीवन अपनाए, तो अपने भीतर छिपे दिव्य तत्त्व को जाग्रत कर सकता है।

सूक्ष्मता केवल भौतिक आकार की बात नहीं है, यह चेतना की परिष्कृत अवस्था, विचारों की गहराई और भावनात्मक संतुलन से जुड़ी होती है। जीव-जंतुओं, कीट-पतंगों और यहाँ तक कि सूक्ष्म जीवाणुओं में भी जीवन होता है, परंतु उनके पास आत्मविकास या विवेक नहीं होता।

इसके विपरीत मनुष्य विचार कर सकता है, विवेकपूर्वक निर्णय ले सकता है और सीमाओं की मर्यादा में रहकर जीवन को सार्थक बना सकता है। मर्यादा का अर्थ है—अपनी सीमाओं को पहचानना और उनके भीतर सर्वोत्तम आचरण करना। जैसे सूर्य और पृथ्वी अपनी-अपनी कक्षाओं में रहकर ब्रह्मांडीय संतुलन बनाए रखते हैं, वैसे ही मनुष्य को भी अपनी जीवन-रेखाओं का सम्मान करना चाहिए।

पृथ्वी, जो सूर्य से औसतन 149.6 मिलियन किलोमीटर दूर स्थित है, इसी दूरी पर रहकर जीवन को पोषित करती है। यदि यह दूरी थोड़ी भी कम या अधिक हो जाए, तो पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जाएगा। इसी प्रकार पृथ्वी का व्यास (12,742 किलोमीटर) और उसका गुरुत्वाकर्षण बल (9.8 m/s^2) भी जीवन के लिए अनुकूल स्थितियाँ प्रदान करता है। यदि इन भौतिक गुणों में थोड़ा भी अंतर आ जाए, तो न जीवन बचेगा, न वातावरण संतुलित रह पाएगा।

हमारी पृथ्वी सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का केवल 1/2 अरबवाँ (0.000000002वाँ) भाग ही ग्रहण करती है, किंतु यही अल्पांश ऊर्जा संपूर्ण जीवन-चक्र को बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। यह उदाहरण दरसाता है कि सूक्ष्मतम संतुलन भी व्यापक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। यह सिद्धांत हमारे व्यक्तिगत जीवन पर भी लागू होता है—सूक्ष्मकार्य, सटीक दृष्टिकोण और अनुशासित जीवनशैली मानवीय श्रेष्ठता के परिचायक बनते हैं।

इसलिए मानव जीवन का लक्ष्य केवल भौतिक उपभोग नहीं, बल्कि आत्मिक उत्कर्ष और समग्र चेतना का विकास होना चाहिए। ब्रह्मांड और पृथ्वी पर जीवन की संभावनाओं को समझने के लिए वैज्ञानिकों ने गहन अनुसंधान किए हैं। यदि पृथ्वी की सतह से 10,000 मीटर ऊँचाई पर फैले 250 वर्गमील क्षेत्र में आने वाली सौर ऊर्जा का विश्लेषण करें तो पता चलता है कि सूर्य से पृथ्वी पर केवल एक घंटे में इतनी ऊर्जा आती है कि वह पूरे वर्ष की वैश्विक ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है।

औसतन, सूर्य प्रतिसेकेंड पृथ्वी पर 1.74 10^1 वॉट ऊर्जा भेजता है। यदि इस विशाल ऊर्जा का मात्र 0.01अंश भी दक्षतापूर्वक उपयोग किया जाए,

तो पृथ्वी से ऊर्जा-संकट समाप्त किया जा सकता है। समुद्र की लहरें, वायुमंडलीय दबाव और पवन-चक्कियाँ जैसे प्राकृतिक स्रोत अक्षय ऊर्जा के प्रमुख साधन हैं। वर्ष 2024 तक, विश्व के कुल विद्युत-उत्पादन में लगभग 30% योगदान नवीकरणीय ऊर्जा-स्रोतों का रहा है, जबकि भारत में यह आँकड़ा 42% तक पहुँच चुका है। फिर भी ऊर्जा की माँग की तीव्र गति इसे अपर्याप्त बनाती है।

वास्तव में ऊर्जा-संकट का मूल कारण मनुष्य की जीवनशैली और उपभोग की आदतें हैं। अनावश्यक भौतिक सुख, विलासिता और असंतुलित जीवन-प्रणाली पृथ्वी के प्राकृतिक संतुलन को विघटित कर रही हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या हमारी ऊर्जा-आवश्यकताएँ वास्तव में उतनी ही अनिवार्य हैं, जितना हम मानते हैं? जब मनुष्य भीतर से संतुलित, संयमी और मानसिक रूप से स्वस्थ होता है, तब उसकी ऊर्जा की माँग भी स्वतः ही घट जाती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति इस सच्चाई को सदियों से जानती रही है।

'परिमित उपभोग' और 'स्वावलंबन' जैसे सिद्धांत आज की परिस्थितियों में अत्यंत प्रासंगिक और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं। आज आवश्यकता है कि हम केवल तकनीकी समाधान की ओर न देखें, अपितु आत्मिक और नैतिक समाधान की दिशा में भी अग्रसर हों। एक ओर हमें सौर, पवन, जल और जैविक ऊर्जा-स्रोतों का वैज्ञानिक उपयोग बढ़ाना चाहिए, तो दूसरी ओर जीवन में संयम, संतुलन, विचारशीलता और मर्यादा को भी स्थान देना चाहिए।

इसी संतुलन में ही पृथ्वी का भविष्य सुरक्षित है और इसी में ही भावी पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध, टिकाऊ और स्थायी जीवन की संभावना निहित है। ❑

दिन भर भीख माँगने के बाद भिखारी एक पेड़ के नीचे बैठकर आराम करने लगा। उसी राह से एक मजदूर आया और वह भी पेड़ के नीचे आकर बैठ गया। भिखारी ने एक दृष्टि मजदूर पर डाली और बोला—"तुमने आज दिनभर जितनी कमाई की, उतनी तो मैं आधे दिन में कर लेता हूँ। भला तुम्हारे में और मुझमें क्या अंतर रहा।" मजदूर बोला—"मित्र! अंतर परिश्रम और अकर्मण्यता का है। मैं अपने पुरुषार्थ से कमाता हूँ और उस कमाई पर गर्व अनुभव करता हूँ, जबकि तुम याचना के पात्र बनते हो और उस धन को अपना मान लेते हो।" भिखारी का आत्मसम्मान जागा और वह भी मेहनत करने निकल पड़ा।

माँ गायत्री की महिमा अपरंपार है

परमानंद, ब्रह्मानंद की प्राप्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। साधक को जब अपनी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति होती है तब उसे जिस अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है, उसे ही परमानंद कहते हैं। आत्मा में परमात्मा से निस्सृत आनंद को ही परमानंद कहते हैं।

साधक को ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाने पर उसे अपनी आत्मा में जिस आनंद की अनुभूति होती है, उसे ही ब्रह्मानंद कहते हैं। आत्मा में ब्रह्म से निस्सृत आनंद को ही ब्रह्मानंद कहते हैं। साधक को परमानंद, ब्रह्मानंद की प्राप्ति होने में गायत्री-उपासना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है। इतना ही नहीं जीवन में श्री, समृद्धि और सफलता की प्राप्ति में भी गायत्री-उपासना से श्रेष्ठ कोई अन्य साधन नहीं। इसलिए शास्त्रों में गायत्री-उपासना, गायत्री-साधना की अपार महिमा कही गई है।

प्राचीन ऋषियों से लेकर आधुनिक युग के ऋषियों, संतों, योगियों आदि सबने गायत्री-उपासना के लौकिक, अलौकिक प्रभाव को अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव किया और इसलिए इस युग के गायत्री के सिद्ध साधक युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री-साधना के अपने निजी अनुभव के आधार पर ही पूरी विश्व मानवता के कल्याण हेतु गायत्री-साधना को सरलतम रूप में प्रस्तुत किया, जिससे कोई भी व्यक्ति नित्य गायत्री-उपासना-साधना के द्वारा अपने जीवन में श्री, समृद्धि, सफलता एवं ब्रह्मानंद जैसे परम लाभ को प्राप्त कर सके।

गायत्री-उपासना की महान महिमा के कारण ही गायत्री के विषय में संतों और साधकों ने गाया है—

हे गायत्री माता तेरी,
महिमा अपरंपार है।
यह अद्‌भुत अति सुंदर तेरा,
रचा हुआ संसार है॥
तू स्रष्टा है विश्व की,
तू है पोषक सृष्टि की।
परिवर्तन के चक्र पर,
तेरा ही अधिकार है॥
सद्‌भावों की स्रोत है,
तू विवेक की ज्योत है।
सत्कर्मों के मूल में,
तेरा ही संचार है॥
तू अनादि गुरुमंत्र है,
अनुशासन जीवंत है।
राम, कृष्ण सबको मिला,
तेरा ही आधार है॥
तुम देवों की माता हो,
शक्ति प्रगति सुखदाता हो।
महाविकट भवरोग पर,
तू अमोघ उपचार है॥

उपरोक्त गीत की कुछ पंक्तियों से ही गायत्री-उपासना-साधना की अपार महिमा अभिव्यक्त हो रही है कि ब्रह्म की स्फुरणा से उत्पन्न ब्रह्मस्वरूपा गायत्री की शक्ति ही इस अद्‌भुत अति सुंदर सृष्टि की रचना की मूल है। संसार में होने वाले परिवर्तनों में आद्यशक्ति गायत्री ही कारण हैं। संसार में स्वर्गीय वातावरण विनिर्मित करने में गायत्री ही मूलशक्ति हैं। साधकों की बुद्धि को पवित्र करने वाली, उनके हृदय में सद्‌भावों, दिव्य भावों को जगाने वाली स्रोत भी गायत्री ही हैं।

गायत्री ही साधक की दुर्मति को सुमति में, दुर्बुद्धि को सद्बुद्धि में परिवर्तित कर उसे अशुभ, बुरे व पापकर्मों से बचाती हैं। गायत्री ही साधकों में सद्ज्ञान, विवेक जगाकर उन्हें सन्मार्ग पर चलाती हैं, इसलिए इनके मंत्र को गुरुमंत्र कहा गया है। भारतीय संस्कृति में गुरुदीक्षा के समय साधक को गुरु के द्वारा गायत्री महामंत्र प्रदान करने की महान परंपरा रही है।

गायत्री मंत्र, गायत्री-उपासना ही संस्कृति के उत्थान, उत्कर्ष का स्रोत रही है। गायत्री की उपासना से ही साधक के शरीर में स्थित शक्तिकोशों का जागरण होता है, जिससे साधक में अपार मनोबल, आत्मबल और ब्रह्मबल की अभिवृद्धि होती है और उसे जीवन के हर क्षेत्र में सफलता मिलती है। जीवन में आने वाली बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों को भी गायत्रीसाधक हँसते-हँसते पार कर लेता है।

गायत्री-उपासना के नित्य निरंतर अभ्यास से चित्त निर्मल होते ही साधक को सहज ही ब्रह्म साक्षात्कार और ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो जाती है। गायत्री को देवमाता भी कहा जाता है; क्योंकि गायत्री-साधना से ही साधक में देवत्व का जागरण होता है।

गायत्री-साधना से साधकों को होने वाले परम लाभ को लेकर अगणित कहानियों का उल्लेख युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने 'गायत्री महाविज्ञान' में किया है। अलवर के एक ग्राम में सामान्य परिवार में पैदा हुए एक सज्जन मथुरा आए और वहीं एक टीले पर रहकर वह गायत्री-साधना करने लगे। वे बहुत ही श्रद्धा, विश्वास, संयम व भक्ति के साथ नित्य, निरंतर गायत्री-उपासना-साधना करते रहे और एक करोड़ गायत्री जप करने के अनंतर उन्हें माँ गायत्री का साक्षात्कार हुआ।

ब्रह्मस्वरूपा गायत्री का साक्षात्कार होते ही उन्हें पल-पल अपार आनंद की अनुभूति होने लगी। गायत्री के उन सिद्ध साधक, उपासक का नाम बूटी सिद्ध था। वे सदा मौन रहते थे। उनके आशीर्वाद से अनेकों का कल्याण हुआ। मथुरा में वे जिस टीले पर साधना करते थे, वह स्थान आज गायत्री टीले के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्राम हरेई जिला छिंदवाड़ा के पं. भूरेलाल ब्रह्मचारी जी ने यह माना है कि 'मुझे हर कार्य में सफलता मिली है और मैं धन-धान्य से परिपूर्ण हुआ हूँ। जिस कार्य में मैं हाथ डालता हूँ, उसी में मुझे सफलता मिलती है। अनेक तरह के संकटों, दुःखों का निवारण आप ही हो जाता है और इन सबके पीछे मेरी नित्य गायत्री-उपासना-साधना ही मूल कारण है।'

वहीं झाँसी के पं. लक्ष्मीकांत झा जी, साहित्याचार्य अपनी गायत्री-उपासना के अनुभव को साझा करते हुए लिखते हैं—"बचपन से ही मुझे गायत्री पर श्रद्धा हो गई थी और उसी समय से मैं नित्य एक हजार मंत्रों का नित्य जप करता हूँ। और इसी के प्रताप से मैंने साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न तथा वेद-शास्त्री आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं तथा संस्कृत कॉलेज, झाँसी का प्रधानाचार्य बना। मैंने एक सेठ के 16वर्षीय मरणासन्न पुत्र के प्राण गायत्री जप के प्रभाव से बचते हुए देखे हैं, जिससे गायत्री-साधना के प्रति मेरी श्रद्धा और भी दृढ़ हो गई है।"

वहीं वृंदावन के पं. तुलसीदास शर्मा लिखते हैं कि श्री उड़िया बाबा की प्रेरणा से हाथरस निवासी लाला गणेशीलाल ने गंगा किनारे कर्णवास में 24 लक्ष गायत्री का अनुष्ठान कराया था। उसी समय से गणेशीलाल जी की आर्थिक दशा दिन-दिन ऊँची उठती गई और उनकी सुख-समृद्धि-प्रतिष्ठा भी बढ़ती गई।

वहीं प्रतापगढ़ के पं. हरनारायण शर्मा लिखते हैं—"मेरे एक निकट संबंधी ने काशी में एक महात्मा से धन-प्राप्ति का उपाय पूछा। महात्मा ने उपदेश दिया कि प्रातःकाल चार बजे उठकर शौचादि

से निवृत्त होकर स्नानादि के बाद खड़े होकर नित्य एक हजार गायत्री मंत्र का जप किया करो। उसने ऐसा ही किया और फलस्वरूप उसका आर्थिक कष्ट दूर हो गया।''

गायत्री के अनन्य उपासक और देवभाषा के असाधारण विद्वान, प्रयाग जिले के छितौना ग्राम निवासी पं. देवनारायण जी लिखते हैं—''विवाह के बहुत काल बीत जाने पर भी जब उनकी पत्नी को संतान नहीं हुई तो वह बहुत दु:खी रहने लगी पर कुछ ही दिन में उनके एक प्रतिभावान मेधावी पुत्र उत्पन्न हुआ।'' वहीं इंदौर निवासी एक गायत्री साधक पं. रक्षपाल जी ने बताया है कि एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ लड़ाई-झगड़ा करता था। घर में हमेशा कलह-क्लेश बना रहता था, पर थोड़े दिन तक गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित जल पीने से उसका स्वभाव बदल गया और उसके घर में सुख-शांति का वातावरण बन गया।

इस प्रकार अनेकों गायत्रीसाधकों ने अपनी निजी जिंदगी में गायत्री-साधना से आए परिवर्तनों का उल्लेख किया है। दरअसल गायत्री-साधना से बुद्धि पवित्र होते ही साधक के भौतिक जीवन में सुख-समृद्धि छाने लगती है। बुद्धि के पवित्र होते ही उसमें पापकर्म करने की प्रवृत्ति का ही लोप हो जाता है।

फलस्वरूप वह सदैव शुभ कर्म में निरत रहता है, पर शुभ कर्मों से मिलने वाले सुफल के प्रति भी आसक्ति नहीं रखने के कारण वह ब्रह्मसाक्षात्कार की ओर अग्रसर होता जाता है और अंतत: ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने से वह ब्रह्मानंद की प्राप्ति भी कर लेता है।

जो साधक नियमित रूप से गायत्री-साधना, संयम, श्रद्धा, भक्ति के साथ करता है; उसे निस्संदेह श्री, समृद्धि, सफलता और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होकर रहती है। ❑

प्रस्तुत वेला जिससे विश्व मानवता गुजर रही है, परिवर्तन की है। युग-परिवर्तन पूर्व में भी होता रहा है, जिसे सामूहिक विकसित चेतना नाम दिया जा सकता है। यही बिगड़ी स्थिति को देखते हुए सुनियोजित विधि-व्यवस्था बनाने, प्राणवान प्रतिभाओं को इकट्ठा कर युगधर्म को निबाहने का सरंजाम पूरा करती है। अवतार इसी प्रवाह का नाम है। इन दिनों उसी महाकाल की प्रबल प्रेरणाएँ युग-परिवर्तन के निमित्त नई परिस्थितियाँ विनिर्मित करती देखी जा सकती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समय को पहचानकर, अपने प्रयास भी इसी निमित्त झोंक दिए जाएँ। श्रेय को पाने व अवतार-प्रक्रिया का सहयोगी बनने का ठीक यही समय है।

—परमपूज्य गुरुदेव

प्रार्थना माँगने की नहीं, स्वयं को बदलने की प्रक्रिया है

एक कहावत है—''ईश्वर उन्हें सब कुछ देता है, जो यह नहीं कहते कि हमें कुछ चाहिए।'' यही विचार गहन प्रार्थना की आत्मा है। सच्ची प्रार्थना का अर्थ है—''बिना कुछ माँगे, अपने जीवन को दिव्य योजना के अनुरूप ढालना।'' जब हम प्रार्थना करते हैं तो हम केवल शब्द नहीं बोलते, बल्कि अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को परम शक्ति के सामने समर्पित करते हैं। इसका उद्देश्य अपने भीतर के दोषों को पहचानकर उन्हें सुधारना और अपने गुणों को विकसित करना होता है।

सच्ची प्रार्थना में माँगना नहीं, स्वीकार करना होता है—जो भी ईश्वर दें, उसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लेना। यह विनम्रता, आस्था और आत्मसमर्पण की प्रक्रिया है। हम केवल अपनी जरूरतों को दोहराते रहें, तो वह प्रार्थना नहीं, व्यापार बन जाती है। प्रार्थना का वास्तविक स्वरूप आत्मनिरीक्षण और आत्मपरिवर्तन है।

यह जीवन के संघर्षों से भागने का माध्यम नहीं, बल्कि उनके समाधान की शक्ति देती है। जब हम नियमित प्रार्थना करते हैं, तो हमारे विचार अधिक शुद्ध, निर्णय अधिक विवेकपूर्ण और जीवन अधिक शांतिपूर्ण हो जाता है।

ईश्वर के समक्ष बैठकर हम अपनी सीमाओं, कमजोरियों और भ्रमों को स्वीकारते हैं और दिव्यता से उन्हें परिवर्तित करने की शक्ति माँगते हैं। यह माँग सांसारिक नहीं, आत्मिक होती है—संतुलन, विवेक, धैर्य, करुणा, निष्ठा जैसे गुणों की माँग के रूप में होती है।

वास्तविक प्रार्थना वही है, जो हमें भीतर से बदल दे और जो हमें ईश्वर के निकट ले जाए, और हमें यह विश्वास दिला दे कि हमें कुछ भी माँगने की जरूरत नहीं; क्योंकि जो चाहिए, वह हमें उसी क्षण मिल जाता है, जब हम स्वयं को ईश्वर की योजना में समर्पित कर देते हैं। ❑

धूप और छाँह के मध्य विवाद छिड़ गया कि दोनों में से किसका महत्त्व ज्यादा है? बहुत बहस के बाद भी जब विवाद हल नहीं हुआ तो दोनों विधाता के पास पहुँचकर बोलीं—''प्रभु! पृथ्वी पर हम दोनों में से किसी एक को ही रहने का अधिकार दीजिए, दूसरे को वहाँ से अलग कर दीजिए।'' विधाता गहरी साँस लेकर बोले—''मुझे दुःख है कि तुम दोनों यह नहीं समझ पाईं कि दोनों का अस्तित्व एकदूसरे पर ही तो आश्रित है। एक के बिना दूसरी कहाँ रह पाएगी। ईर्ष्या छोड़कर प्रेम से रहो, तो ही उन्नति कर पाओगी।'' मनुष्य भी यों ही ईर्ष्या-द्वेष में समय गुजार देता है; जबकि वही समय उसे ऊँचाइयों के शिखर तक पहुँचा सकता है।

मामेकं शरणं व्रज

कृपानिधान, करुणासिंधु भगवान की कृपा और करुणा जिस किसी को भी प्राप्त हो जाती है, भला उसके सौभाग्य का क्या कहना? जिस पर भगवान की कृपा व करुणा बरस जाती है, वह निस्संदेह भगवान का हो जाता है और भगवान उसके हो जाते हैं।

जो कोई भी सच्चे मन से भगवान का हो जाता है, फिर भगवान तो उसके हो ही जाते हैं; क्योंकि सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली, कृपासिंधु, करुणासिंधु भगवान शरणागतवत्सल, भक्तवत्सल जो हैं। फिर उनकी शरण में आया हुआ व्यक्ति कौन है? कैसा है? नीच है, अधम है, अधर्मी है, पापी है, पुण्यात्मा है—वे यह देखते ही कहाँ हैं?

इसलिए पापी-से-पापी, अधम-से-अधम व्यक्ति भी जब भगवान की शरण में आ जाता है तो शरणागतवत्सल भगवान उसकी शरणागति को स्वीकार करते-ही-करते हैं। उस पर अपनी कृपा करते-ही-करते हैं। उसे नई दृष्टि प्रदान करते हैं, उसे अपनी भक्ति प्रदान करते हैं, अपनी शक्ति प्रदान करते हैं, ज्ञान प्रदान करते हैं और तब भगवान की शक्ति, भक्ति, ज्ञान, करुणा, कृपा पाकर साधारण व तुच्छ व्यक्ति भी असाधारण भूमिका में जीने लगता है। तुच्छ भी महान हो जाता है और वह जीवन में महान कार्य करने लगता है।

इसलिए भगवान की कृपा के विषय में गोस्वामी तुलसीदास को मुक्त कंठ से यह कहना पड़ा, गाना पड़ा, लिखना पड़ा—

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

अर्थात जिनकी कृपा से गूँगा बोलने वाला हो जाता है और लँगड़ा-लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है, वे कलियुग के सब पापों को जला डालने वाले दयालु भगवान मुझ पर द्रवित हों, मुझ पर दया करें, मुझ पर कृपा करें।

अस्तु अधम-से-अधम, पतित-से-पतित व्यक्ति भी जब स्वयं को पूर्णरूपेण भगवान को समर्पित कर देता है तब उसके हृदय की, उसकी आत्मा की बस, एक ही आकुल पुकार होती है—

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥

अर्थात जो भगवान नीलकमल के समान श्याम वर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लालकमल के समान जिनके नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागर पर शयन करते हैं, वे भगवान मेरे हृदय में निवास करें। इस प्रकार भगवान की शरण में आया हुआ भक्त अपने हृदय में नित्य निर्गुण-निराकार ब्रह्म अथवा सगुण-साकार भगवान की मधुर व दिव्य छवि का ध्यान करता है।

फिर सच्ची शरणागति और नित्य भगवद्ध्यान के प्रभाव से उसे अपने हृदय में, अपनी आत्मा में यह अनुभूति होने लगती है कि स्वयं करुणाकंद, आनंदकंद भगवान ही मेरे हृदय में प्रकट हुए हैं, तभी तो मुझे पल-पल आत्मिक आनंद, परम आनंद की अनुभूति होने लगी है, अस्तु जो सचमुच आनंदकंद, करुणाकंद भगवान को अपने हृदय में परमानंद के रूप में अनुभव करना चाहते हैं, उन्हें भगवान का यह उद्घोष सदैव स्मरण रखना चाहिए और भगवान की शरणागति में अब और विलंब नहीं करना चाहिए—

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

अर्थात मेरे भक्त किसी भी कुल, गोत्र और जाति के क्यों न हों, वे पतित हों अथवा पावन, वे

सभी मुझे अपने प्राणों के समान ही प्रिय हैं। भगवान का यह उद्घोष वास्तव में भक्तों के प्रति उनके अगाध प्रेम, भक्तवत्सलता, शरणागतवत्सलता को ही प्रकट करता है।

उसी प्रकार शरणागतवत्सल भगवान श्रीकृष्ण गीता (18.66) में हमें स्पष्ट रूप से आश्वासन करते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात संपूर्ण धर्मों को एवं संपूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर। हमें यह मान लेना चाहिए कि शरणागति से पूर्व हम जैसे भी रहे हों, भगवान की शरण में आ जाने के पश्चात भगवान हमें उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं और अपनी शरणागति प्रदान करते हैं।

भगवान की शरण में आ जाने के पश्चात हृदय में सतत भगवान की मधुर-मनोहर छवि का स्मरण, ध्यान करते रहने से हमारे अंतःकरण में नित्य नए-नए परमानंददायक अनुपम और दिव्य भावों की स्फुरणाएँ होती रहती हैं तथा हम सर्वथा शुद्ध अंतःकरण होकर भगवान की अलौकिक कृपा-सुधा का रसास्वादन करते हुए शीघ्र ही भगवान को प्राप्त हो जाते हैं। ❑

मधुमक्खी उड़ती-उड़ती एक फूल पर जा बैठी और मकरंद चूसने लगी। एक तितली भी पास ही मँडरा रही थी। उसने पूछा—''बहन! यह क्या कर रही हो?'' तो मधुमक्खी बोली—''मैं मधु एकत्र कर रही हूँ।'' तितली ताना देती हुई बोली—''तुम भी कितनी नादान हो। भला छोटे-से फूल में भी कहीं मधु रखा है? बेकार समय व शक्ति जाया कर रही हो। आओ, हम दोनों मिलकर मधु का सरोवर ढूँढ़ें।'' मधुमक्खी ने कुछ उत्तर नहीं दिया और अपना कार्य करती रही। तितली मधु के सरोवर की खोज में सारे वन में भटकती रही। शाम को दोनों घर लौटीं तो तितली ने देखा कि वह स्वयं तो खाली हाथ है, पर मधुमक्खी का घर मधु से भर गया है। यह देख वह मधुमक्खी से बोली—''बहन! अब मैं समझी कि कार्य छोटा-बड़ा नहीं होता, मात्र महत्त्वपूर्ण या महत्त्वहीन होता है। शक्ति का सही उपयोग करने में ही कार्य की सार्थकता है।''

आत्मज्ञान – मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि

महर्षि व्यास की दो प्रसिद्ध बातें हैं—'धर्म' और 'ज्ञान'। उन्होंने कहा कि मनुष्य को न केवल अच्छे कर्म करने चाहिए, बल्कि अपने भीतर के ज्ञान को भी विकसित करना चाहिए। यदि कोई केवल दूसरों को उपदेश देता रहे, परंतु स्वयं साधना न करे, तो वह आधा-अधूरा जीवन ही जीता है। ज्ञान को जीवन में उतारना ही सच्ची उपासना है।

जब मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि धन-संपत्ति से क्या अमरत्व पाया जा सकता है तो उन्होंने उत्तर दिया—नहीं, कभी नहीं। अमरत्व केवल आत्मज्ञान से ही संभव है। उन्होंने कहा कि धन, पति, पुत्र आदि सब तभी प्रिय लगते हैं, जब आत्मा प्रिय होती है।

उपनिषदों में स्पष्ट कहा गया है कि आत्मा की पहचान और साक्षात्कार ही समस्त साधनाओं का सार है। यह जानना कि 'मैं कौन हूँ' और 'मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है' यही असली ज्ञान है।

शास्त्रों में कहा गया है—**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः**। (बृहदारण्यक उपनिषद्) अर्थात आत्मा को जानना, देखना और अनुभव करना ही जीवन का परम उद्देश्य है। गीता में कहा है—

'उद्धरेदात्मनात्मानं'

(गीता, 6/5)

अर्थात अपनी आत्मा के द्वारा ही स्वयं का उद्धार करना चाहिए। जो व्यक्ति आत्मा को जान लेता है, वह संसार के सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। यही मुक्ति-पथ है, यही शांति का मार्ग है। शास्त्र कहते हैं—**'दुःखस्य मूलं अविद्या'** (शंकर भाष्य) इसलिए आत्मज्ञान ही जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

यह मनुष्य को अपने सत्य स्वरूप से जोड़ता है और जीवन में स्थायी सुख व शांति प्रदान करता है। सच्चे और गहरे आत्मज्ञान की प्रेरणा वही व्यक्ति देता है, जो स्वयं उसके लाभ को अनुभव कर चुका होता है। जब किसी के मन, जीवन और व्यवहार में आत्मिक शांति, स्थिरता और उदारता झलकती है, तभी उसका प्रभाव दूसरों पर होता है। यदि जीवन में प्रकाश है तो वह स्वतः ही दूसरों को भी आलोकित करता है।

आत्मज्ञान का मूल प्रश्न यही है—'मैं कौन हूँ?' 'मुझे क्यों जन्म मिला?' 'मेरा जीवन किस उद्देश्य के लिए है?' 'मुझे कहाँ जाना है?' जब मनुष्य इन प्रश्नों से जूझता है और उत्तर तलाशता है तब वह 'आत्मबोध' की दिशा में बढ़ता है। एक बार एक राजा ने अपने पुत्र को समझाने के लिए एक उदाहरण दिया। उसने कहा—तू यह शरीर नहीं है। तू तो वह आत्मा है, जो इस शरीर का उपयोग करता है। यदि तू अपने को केवल शरीर मानता है तो तू भ्रम में है।

सच्चा आत्मज्ञान केवल किताबें पढ़कर या उपदेश सुनकर नहीं आता। वह एक गहरी साधना, अनुभव और आंतरिक जिज्ञासा से प्राप्त होता है। जिस दिन यह बोध हो जाता है कि 'मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ' उस दिन जीवन की दिशा ही बदल जाती है। आत्मा का बोध करने का अर्थ है कि अपने भीतर के स्रोत को पहचानना, अपने स्वभाव को जानना, और उस गहन शांति में टिक

जाना, जो किसी भी परिस्थिति से डगमगाती नहीं। आत्मज्ञान से व्यक्ति के सोचने का ढंग, निर्णय की प्रक्रिया और संबंधों का स्वरूप ही बदल जाता है।

वह क्रोध, लोभ, मोह से ऊपर उठ जाता है। उसके लिए संसार केवल साधन बन जाता है, साध्य नहीं। महर्षियों का कहना है—जो आत्मा को जान लेता है, वह सभी दु:खों से मुक्त हो जाता है। वह अपने अंदर की परम शक्ति को पहचान लेता है। वह जान जाता है कि जीवन केवल शरीर की सीमाओं में नहीं बँधा है। इसलिए आत्मज्ञान न तो कोई रहस्य है, न ही कोई जटिल विषय। यह तो स्वयं के प्रति सजग और ईमानदार बनने का साहसिक प्रयास है। □

आवश्यक सूचना

1. कोई भी संदेश (फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्रवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।
2. सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्रवाई की जा सके।
3. अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अत: संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्रवाई में विलंब होता है।
4. राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।
5. अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।

पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.), 281 003
फोन—(0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,
Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

आशा-उत्साह से भरा जीवन

मनुष्य जीवन की सार्थकता इसमें आशा, उत्साह और उमंग से भरे भाव में है। इसके लिए स्वयं को सतत प्रेरित रखना आवश्यक हो जाता है। प्रेरणा के अभाव में जीवन अरुचिकर एवं नीरस हो जाता है और व्यक्ति शिथिलता एवं निराशा का शिकार हो जाता है। ऐसे में हताशा-निराशा के झूले में झूलता जीवन एक बोझिल अभिशाप जैसा प्रतीत होता है। यदि किसी कारणवश ऐसी स्थिति से गुजरने की बाध्यता बन रही हो तो जीवन का पुनरावलोकन करते हुए इसे नए सिरे से परिभाषित एवं निर्धारित किया जा सकता है।

प्रस्तुत है इस प्रक्रिया में सहायक कुछ स्वर्णिम सूत्र। इस संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण है—एक जीवनोपयोगी लक्ष्य का स्पष्ट होना व इसके व्यावहारिक स्वरूप का होना। इसके लिए स्मार्ट गोल की बात की जाती है, जो विशिष्ट, मापनीय प्राप्त करने योग्य, प्रासंगिक और समयबद्ध हो। साथ ही इसका अंत:प्रेरित होना महत्त्वपूर्ण है। दूसरों की देखा-देखी या नकल कर अपनाया गया जीवनलक्ष्य अधिक दूर तक साथ नहीं देता।

अंत:प्रेरित लक्ष्य ही दीर्घकालिक रहता है और तमाम उतार-चढ़ाव के बीच भी व्यक्ति को धैर्य एवं उत्साह के साथ मंजिल की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। लक्ष्य इतना जटिल भी न हो कि समय पर पूरा न हो सके और रास्ते में ही हताशा का कारण बने। इसके लिए लक्ष्य को छोटे-छोटे हिस्सों में बाँटें और नित्य अपनी प्रगति का लेखा-जोखा लेते रहें, जो पूरा होने पर उत्साह का भाव जाग्रत करेंगे। छोटी-छोटी विजय प्राप्त होने पर स्वयं को पुरस्कृत भी करें।

अपने स्तर पर इसका उत्सव मनाएँ, जिससे यात्रा का रोमांच बना रहेगा। वास्तव में मंजिल से अधिक यात्रा का आनंद ही जीवन को रुचिकर बनाता है। यदि बीच में लक्ष्य का विस्मरण हो जाए और पुराना उत्साह चूकने लगे तो दीर्घकालिक लक्ष्य का स्मरण करें कि इसकी शुरुआत क्यों की गई थी। उन पलों का स्मरण, भाव संकल्प को धार देगा और नए शुभारंभ का प्रेरक आधार तैयार करेगा। साथ ही एक समय पर एक ही कार्य पर केंद्रित रहें। इसके पूरा होने पर ही दूसरे कार्य पर हाथ लगाएँ।

एक साथ कई कार्यों को हाथ में लेने पर लक्ष्य प्राप्ति में विलंब होता है और आवश्यक उत्साह नहीं बन पाता। कार्य की समय-सीमा तय करना महत्त्वपूर्ण रहता है। समय-सीमा के अंतर्गत कार्य करने पर ही आशातीत परिणाम हाथ आते हैं। निस्संदेह रूप में इसके लिए जीवन को अनुशासित करना पड़ता है और लक्ष्य केंद्रित रहना पड़ता है। साथ ही ऐसे लक्ष्य को चुनें, जो पर्याप्त रूप से चुनौतीपूर्ण हो, लेकिन असंभव नहीं। इससे रुचि के साथ रोमांच का भाव भी बना रहेगा और अपनी इच्छाशक्ति की भी परख होगी।

इसी के साथ अनुशासित दिनचर्या स्वभाव का अंग बनेगी। ऐसे में प्रेरणा के अभाव में भी लक्ष्य-प्राप्ति की ओर पग बढ़ रहे होंगे अन्यथा उचित प्रेरणा के इंतजार में हो सकता है कि लक्ष्य-सिद्धि से वंचित ही रह जाएँ। प्रेरक समय के

इंतजार से बेहतर है कि अनुशासित जीवनशैली को अपनाएँ और चरणबद्ध रूप में अपने लक्ष्य की प्राप्ति करते रहें।

यहाँ समय प्रबंधन के संदर्भ में सजग रहें। समय को बरबाद करने वाले व्यवधानों को पहचानें व इनसे प्रभावी ढंग से निपटें। असफल होने या आशातीत परिणाम न आने पर स्वयं को न कोसें, न ही नकारात्मक आत्मसंवाद में उलझें, बल्कि सकारात्मक आत्मसंवाद को अपनाएँ और अपनी गलतियों से सीखते हुए आगे बढ़ें और हर असफलता को आगे बढ़ने की सीढ़ी बनाएँ।

अपने शुभचिंतकों को अपने लक्ष्य के बारे में बताएँ, जो आवश्यकता पड़ने पर आगे बढ़ने में सहायक हो सकते हैं। स्वयं को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरक सामग्री का उपयोग करें। इस संदर्भ में महापुरुषों की जीवनियाँ, प्रेरक पुस्तकें, मनपसंद गीत-संगीत व ज्ञानवर्द्धन साहित्य आदि का पठन एवं श्रवण सहायक सिद्ध हो सकता है। इसके साथ एक स्वस्थ जीवनशैली को अपनाएँ। अपने आहार, विहार, विचार एवं व्यवहार को संयमित एवं संतुलित रखें।

पौष्टिक आहार के साथ पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करें। शरीर को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए व्यायाम को स्थान दें। थकान लगने पर उचित विराम व विश्राम की व्यवस्था रखें। स्वयं को तरोताजा रखने के लिए पर्याप्त नींद लें। अपने शौक को अपनाएँ तथा अपने उत्साह को जीवंत रखें और प्रकृति की गोद में विचरण करते हुए अपने स्वास्थ्य को आवश्यक पोषण दें।

बीच-बीच में भ्रमण के लिए बाहर निकलें। इसके साथ तन-मन में दबी भावनाओं का विरेचन होता है और यह प्रयोग सुप्त प्रेरणा को उभारने में भी सहायक सिद्ध होता है। अपनी सकारात्मक मनःस्थिति को बनाए रखें। इसके लिए सकारात्मक लोगों का संग-साथ उपयोगी रहता है।

कार्य यदि नीरस या अरुचिकर लग रहा हो तो इसे व्यापक हित से जोड़कर रोचक बना सकते हैं। इससे जुड़े संभावित लाभों को मन में देखें। सफलता की रोमांचक स्थिति की कल्पना करें कि लक्ष्य पूरा होने पर आप कैसा अनुभव कर रहे होंगे। यह अभ्यास लक्ष्य-प्राप्ति की अंतःप्रेरणा को जीवंत रखेगा। इस तरह लक्ष्य-प्राप्ति की यात्रा का आनंद लें।

लक्ष्य पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित करने से अधिक वर्तमान पर ध्यान दें। अपने जीवन-ध्येय एवं कर्त्तव्य के प्रति सजग रहें और छोटे-छोटे कदमों के साथ आगे बढ़ते हुए छोटी-छोटी उपलब्धियों को प्राप्त करें व बड़ी सफलताओं के अधिकारी बनें तथा अनुशासित कदमों के साथ उत्साह-उमंग को धारण करते हुए प्रगति-पथ पर अग्रसर रहें। ❑

अयोध्या में भगवान श्रीराम का राज्याभिषेक होने के पश्चात एक दिन सभा में लंका की चर्चा होने लगी। हनुमान जी बोले कि अशोक वाटिका में कमल के फूल लाल रंग के थे। सीता जी कहने लगीं कि फूल सफेद रंग के थे।

भगवान श्रीराम विवाद सुलझाते हुए बोले—"पुष्प सफेद रंग के ही थे, पर उस समय माँ सीता की वह स्थिति देखकर हनुमान जी को जो क्रोध आया, उससे उन्हें वे पुष्प लाल रंग के दिखे।"

जैसा अंदर होता है, वैसा ही बाहर दिखाई पड़ता है।

अपनी राह चला लो गुरुवर

सरिता को सागर बनने के लिए एक लंबी यात्रा करनी पड़ती है। सरिता में सागर बनने की तीव्र अभीप्सा पैदा होते ही वह तीव्र अभीप्सा उसे सागर की ओर जाने वाली राह की ओर मोड़ देती है, चला देती है, दौड़ा देती है और एक लंबी दूरी तय करने के बाद वह सरिता सागर में मिलते ही स्वयं भी सागर हो जाती है। तब उसकी अपनी कोई अलग पहचान नहीं रह जाती; क्योंकि वह अपनी पहचान मिटाकर अब स्वयं भी सागर हो गई है।

सागर से मिलने की तीव्र अभीप्सा और समर्पण ने ही सरिता को सागर बना दिया। वैसे ही जब साधक-शिष्य अपने गुरु, अपने आराध्य के लिए अपना सर्वस्व, अपना अस्तित्व, अपनी पहचान, अपनी इच्छाएँ, अपनी मनोकामनाएँ, अपनी लालसाएँ आदि सबको मिटाकर अपने आराध्य, अपने गुरु के चरणों में संपूर्ण समर्पण कर देता है और गुरु की राह पर चल पड़ता है तथा गुरु-सेवा में, गुरु-कार्य में प्राणपण से जुट जाता है, भगवद्स्मरण, सुमिरण, ध्यान में मग्न हो जाता है तब वह भी साधारण-से-असाधारण हो जाता है, लघु-से-विभु हो जाता है।

ब्रह्म की अनुभूति होते ही वह साधक, वह शिष्य, वह जीव भी ब्रह्मलीन हो जाता है, ब्रह्मरूप हो जाता है। जीव जब ब्रह्म के साथ ऐक्य हो जाता है, तब वह जीव ब्रह्म ही हो जाता है। इस आनंदमयी स्थिति को प्राप्त करने हेतु साधक में, शिष्य में, भक्त में सर्वप्रथम अपने आराध्य, अपने गुरु को पाने की तीव्र अभीप्सा होनी चाहिए। अपनी निजी मनोकामनाओं, लालसाओं, अभिलाषाओं, इच्छाओं को तज कर अपने गुरु, अपने आराध्य की इच्छा, लालसा, अभिलाषा को ही अपनी इच्छा, लालसा और अभिलाषा बना लेना चाहिए।

हमारी निजी इच्छाएँ, लालसाएँ, अभिलाषाएँ, मनोकामनाएँ ही तो हमारे गुरु की राह पर, भगवान की राह पर चलने में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। इन्हें त्यागना आवश्यक है। हमें अपनी राह पर नहीं, अपने आराध्य, अपने गुरु की राह पर चल पड़ना चाहिए और उनके ध्यान में मग्न होकर बस, उनसे यही एकमात्र विनती करनी चाहिए—

अपनी राह चला लो गुरुवर,
अपनी राह चला लो।
हमें साथ ले, हाथ-हाथ ले,
अपना रास रचा लो गुरुवर॥
चरण हमारे, चाल तुम्हारी,
नटवर, गतिलय ताल तुम्हारी।
रंग मंच के पात्र मात्र हम,
संयोजना, विशाल तुम्हारी॥
पात्र, मंच पर होता जैसा,
वैसा हमें बना दो गुरुवर।
प्राण हमारे, साँस तुम्हारी,
मात्र बाँसुरी देह हमारी॥
जीवन का संगीत तुम्हारा,
गीतों को है आश तुम्हारी।
प्राण फूँक, पोली बंसी में,
शाश्वत स्वर में गा लो गुरुवर॥
मन मंदिर में मूर्ति तुम्हारी,
प्राणों में है प्रीति तुम्हारी।
करो मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा,
वैसी, जैसी कीर्ति तुम्हारी॥

इस पत्थर जैसी काया में
जीवन शक्ति जगा दो गुरुवर॥
मंदिर में क्यों रहे अँधेरा,
आत्मज्योति पर तम का घेरा।
वह प्रकाश फैले अंतर में,
रहे नहीं अज्ञान बसेरा॥
महायज्ञ के आयोजन में,
हम हों आहुति, तुम हो होता।
जन मंगल के महायज्ञ में,
आहुति हमें बना दो गुरुवर॥
जीवन आहुति का यश ले लें,
स्वस्थ सुगंधि सृष्टि में फैले।
हम जब पावन यज्ञ रचाएँ,
फिर जन-मन त्रिताप क्यों झेले॥

उपरोक्त गीत की पंक्तियों में एक शिष्य की, साधक की, भक्त की; अपने आराध्य से, अपने गुरु से यही विनती है कि हे प्रभु! हे गुरुवर! मेरा मलिन मन, कर्म संस्कारयुक्त मन तो मुझे अपनी राह पर चलाना चाहता है, पर उस राह पर चलते हुए मुझे सिवाय कष्ट, क्लेश, आपदा, विपदा, जन्म-मरण के मिला ही क्या? बस, अब और नहीं। अब मैं अपनी राह पर नहीं, आपकी राह पर चलना चाहता हूँ; क्योंकि आपकी राह पर चलकर ही असंख्य साधकों, शिष्यों, भक्तों ने ब्रह्मसुख पाया है, ब्रह्मपद पाया है।

मैं तो रंगमंच का एक पात्र मात्र हूँ। मेरे द्वारा रंगमंच पर होने वाले अभिनय के सूत्रधार, पटकथा लेखक तो आप ही हैं। हे गुरुदेव! हे प्रभु! मैं तो आपके ओंठों पर लगी उस बाँसुरी की तरह हो जाना चाहता हूँ, जिससे मेरा नहीं, बल्कि आपका ही स्वर फूटे। मेरी बाँसुरी से मेरा नहीं, बल्कि आपका ही स्वर, आपका ही गीत-संगीत निकले।

आप ब्रह्मनिष्ठ हैं, आप ही ब्रह्म हैं, अस्तु आप हमारे हृदय में भी ब्रह्म की प्राण-प्रतिष्ठा कर दें, जिससे हमारे हृदय में भी, हमारी आत्मा में भी ब्रह्म अभिव्यक्त हो सकें और हम ब्रह्मानंदित हो सकें, परमानंदित हो सकें।

हे प्रभु! लोक-मंगल, जन-मंगल के आपके महायज्ञ में आप हमें भी एक आहुति बना लें। युग परिवर्तन, सतयुग की वापसी हेतु चल रहे आपके अभियान यज्ञ में आप होता बनकर, याजक बन कर, उस महायज्ञ में मुझे आहुति बनाकर अर्पित कर दें, जिससे न सिर्फ मेरे बल्कि जन-जन के जीवन में और संपूर्ण सृष्टि में स्वर्गीय सुगंधि फैल सके और इस प्रकार हमारा मानव जीवन सफल हो सके।

नरेंद्र एक साधारण-सी जिंदगी जीते हुए ही इस संसार से चले जाते, यदि वे गुरु की राह पर,

धनार्जने यथा बुद्धेरपेक्षा व्ययकर्मणि।
ततोऽधिकैव सापेक्ष्या तत्रौचित्सस्य निश्चये॥

अर्थात धन कमाने में जितनी बुद्धि लगाने की आवश्यकता है, उससे कई गुना ज्यादा औचित्य के निर्धारण को करते समय लगानी चाहिए।

भगवान की राह पर न चले होते। ध्रुव-भी-ध्रुव नहीं बन पाते, यदि वे अपने गुरु देवर्षि नारद की राह पर, उनके द्वारा बताई गई भगवान की राह पर न चले होते। श्रीअरविंद महानता के शिखर को छू सके; क्योंकि वे भगवद्इच्छा को धारण कर भगवान की राह पर चल सके।

स्वयं युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव भी महानता को, आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त न कर पाते और कोटिशः लोगों को प्रभुता, दिव्यता, देवत्व, सद्ज्ञान और सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित नहीं कर पाते यदि वे अपने गुरु की राह पर नहीं चले होते। अस्तु हमें भी गुरु की राह पर, भगवान की राह पर अविलंब चल पड़ना चाहिए। ❑

पर्व विशेष—परशुराम जयंती

धर्मरक्षक ऋषि परशुराम

पृथ्वीलोक पर अष्ट चिरंजीवियों में सम्मिलित भगवान परशुराम स्वयं भगवान विष्णु के छठे अवतार कहे गए हैं। महर्षि जमदग्नि की संतान होने के कारण इनका एक नाम जामदग्नि भी है। वैदिक ऋषियों में इनकी गणना महान तपस्वी, योद्धा व धर्मरक्षक के रूप में होती है। शास्त्र और शस्त्र—दोनों में पारंगत कहे जाने वाले भगवान परशुराम श्रीविद्या व धनुर्विधा के महान आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

हिंदू समाज अक्षय तृतीया को इनकी जयंती बड़े धूम-धाम से मनाते आया है। इस दिन पवित्र नदियों में स्नान, दान, तप, पूजा—भगवान विष्णु के विशेष मंत्रों से जप, आरती, शोभायात्रा, उपवास, भजन, भंडारा आदि अनेकानेक आयोजन किए जाने की सुदीर्घ परंपरा रही है। अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना के आदर्श भगवान परशुराम का जीवन-चरित्र अत्यंत दिव्य एवं विलक्षण रूप में प्रकट हुआ है।

एक महातपस्वी, न्यायकारी योद्धा, ऋषि के रूप में उनसे संबंधित कथानकों, दृष्टांतों, कहानियों और किंवदंतियों को शास्त्र, पुराण, महाकाव्य आदि ग्रंथ व साहित्य में अनेक रूपों में देखा जा सकता है। पुराणों में उनके जन्म लेने की विलक्षणता है तो महाभारत में उनके शौर्य-पराक्रम और न्याय की गाथा है। स्वयं परशुरामकृत 'कल्पसूत्र' को श्रीविद्या के एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के रूप में माना जाता है। कुछ विद्वानों ने इस ग्रंथ को 'त्रिपुरा उपनिषद्' का उपबृंहण (वृद्धि) ही माना है।

इसके अतिरिक्त 'परशुराम-मंत्र' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख मिलता है। इन सभी विशेषताओं से पता चलता है कि क्षत्रियोचित व ब्राह्मणत्व के गुणों से युक्त उनका दिव्य चरित्र भारतीय संस्कृति व धर्ममय समाज में उनकी विशिष्ट छवि को प्रकट करता है। पौराणिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि भगवान परशुराम ने कठोर तपस्या करके अनेक अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति की थी। इन्होंने इंद्रिय संयम, मनोनिग्रह, पूजा, होम, जप, तप आदि कठिन उपायों के द्वारा भगवान शिव की कृपा प्राप्त की थी।

फरसा (कुल्हाड़ी) इन्हें शिव द्वारा ही प्रदान किया गया था, तभी से इनका नाम राम से परशुराम अर्थात परशु वाले राम हुआ। कथानक आता है कि जब कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन द्वारा इनके पिता जमदग्नि की कामधेनु गाय हरण कर ली गई थी और उसे वापस लाने के लिए पिता को कार्तवीर्य से बदला लेना पड़ा था—इसके पश्चात कार्तवीर्य के पुत्रों ने महर्षि जमदग्नि की हत्या कर दी।

ऐसा माना जाता है कि इसी कारण से भगवान परशुराम क्षत्रियों के चिरशत्रु बन गए और उन्होंने क्षत्रियों के विनाश करने की प्रतिज्ञा ली थी। महाभारत में अनेक स्थानों पर इनके द्वारा 21 बार क्षत्रियों के संहार करने की कथा आती है।

यह भी उल्लेख है कि इन्होंने लाखों हैहयवंशियों का वध किया था। श्रीमद्भागवत के अनुसार—हैहय वंश का अंत करने के लिए ही स्वयं भगवान विष्णु ने परशुराम जी के रूप में अंशावतार धारण किया था—

यमाहुर्वासुदेवांशं हैह्यानां कुलान्तकम्।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम्॥

इसी प्रकार स्कंद पुराण और भविष्य पुराण में ऋषि जमदग्नि और माता रेणुका के पुत्र के रूप में भगवान विष्णु के अवतरण का उल्लेख है।

ब्रह्मांड पुराण में भगवान परशुराम के धरा पर अवतरण एवं विशिष्ट प्रयोजन को अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कथा का सार यह है कि अधर्मियों के पापों से त्रस्त होकर जब माता पृथ्वी व्याकुल हो उठी और उन्होंने गाय का रूप लेकर अपनी रक्षा के लिए भगवान विष्णु से प्रार्थना की। भगवान ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए क्षत्रिय राजाओं के अत्याचारों से पृथ्वी की रक्षा का वचन दिया और स्वयं ब्राह्मण कुल में भगवान परशुराम के रूप में अवतार धारण किया।

स्मृति साहित्य व पौराणिक आख्यानों में भगवान परशुराम की वंश-परंपरा का विस्तार से उल्लेख है। भृगु वंश में छठी पीढ़ी में इनकी उत्पत्ति कही गई है। भृगु के पुत्र च्यवन, च्यवन और मनु की पुत्री आरुषी से उत्पन्न और्व, और्व के पुत्र ऋचीक, ऋचीक व सत्यवती से उत्पन्न पुत्र जमदग्नि तथा जमदग्नि के सबसे छोटे पुत्र परशुराम हुए।

दंतकथाओं में आता है कि भगवान परशुराम ने अपने और अपनी माता के इक्ष्वाकु वंश को छोड़ कर अन्य सभी दुष्ट क्षत्रिय वंशों का नाश कर अश्वमेध यज्ञ किया और सप्तद्वीपों सहित संपूर्ण पृथ्वी ऋषियों को दान कर तपस्या करने चले गए। रामायण में सीता स्वयंवर के पश्चात भगवान परशुराम के वहाँ पहुँचने तथा भगवान राम से संवाद की कथा तो प्रसिद्ध है।

महाभारत में भीष्म, आचार्य द्रोण, कर्ण के गुरु एवं राजकुमारी अंबा की ओर से हस्तक्षेप कर न्याय के लिए भीष्म से युद्ध का वर्णन आता है। एक महान ऋषि-योद्धा के रूप में महाभारत में उनका चरित्र-चित्रण धरती पर न्याय, धर्म, शक्ति, साहस, तप और भक्ति के आदर्श की अनुपम छवि के रूप में हुआ। रामायण और महाभारत के साथ एक और अद्भुत संयुक्ति यह है कि भगवान राम और योगेश्वर श्रीकृष्ण—दोनों ही विष्णु अवतार कहे जाते हैं।

इन अवतारों के साथ सह-अस्तित्व में भगवान परशुराम का होना उनके विलक्षण जीवन-चरित्र को प्रकट करता है। दक्षिण भारत के साहित्य और संस्मरणों में भी भगवान परशुराम के जीवन-चरित्र से जुड़ी अनेक कथा-कहानियाँ और दृष्टांत प्रचलित हैं। कुछ संस्मरणों में कहा जाता है कि परशुराम एक वीर एवं उग्र स्वभाव के ब्राह्मण थे, जिन्होंने पिता की मृत्यु का बदला लेने सुशासन की स्थापना के लिए इक्कीस बार पृथ्वी का भ्रमण किया और रास्ते के सभी अन्यायी क्षत्रिय राजाओं, अधर्मियों, अत्याचारियों का संहार किया।

एक कथानक यह भी है कि पिता की आज्ञापालन के लिए भगवान परशुराम ने अपनी ही माँ की हत्या कर दी थी और पुनः पिता से वरदान प्राप्त कर उन्हें जीवित कर लिया था। केरल के आंचलिक साहित्य में भगवान परशुराम द्वारा समुद्र से भूमि प्राप्त कर हिंदुओं को देने की कहानियाँ मौजूद हैं।

कोंकण से केरल तक परशुराम भूमि का उल्लेख अनेक स्थानों में प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार वैदिक, पौराणिक, आंचलिक आदि सभी स्तर के ग्रंथ, साहित्य एवं समाज व परंपराओं में भगवान परशुराम के जीवन-चरित्र की विलक्षण एवं दिव्य विशिष्टताओं का प्रकटीकरण है। भक्तगण उनकी जयंती पर देश, काल, परंपरानुसार उनकी इन पावन कथाओं, आदर्शों को स्मरण कर उन्हें याद करते

रहे हैं और जीवन-कल्याण की प्रेरणाएँ ग्रहण करते रहे हैं।

उनका यह पर्व मुख्य रूप से व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को उदात्त आदर्शों एवं प्रेरणाओं से भर देने का संदेश देता है। अनुशासन, तप, न्यास, साहस, धैर्य के प्रतीक के रूप में भगवान परशुराम की छवि सभी धर्मप्रेमी भक्तों के अंत:स्थल में विराजमान है।

अनेक स्थानों पर जयंती पर्व के उपलक्ष्य में यज्ञ, जप, भंडारा, शोभायात्रा जैसे विशिष्ट आयोजन होते हैं। मोकामा स्थित भगवान परशुराम मंदिर में तो इस जयंती पर्व को एक बड़े उत्सव के रूप में, अधर्म पर धर्म की विजय के रूप में मनाया जाता है।

बिहार राज्य में इस पर्व को राजकीय उत्सव का दर्जा प्राप्त है और जयंती पर्व पर निकलने वाली कलश यात्रा को देखने व सम्मिलित होने देश-विदेश से भक्तगण सम्मिलित होते हैं।

हिमाचल राज्य में भी इस दिन अवकाश रहता है। भारतवर्ष के अन्य राज्यों—भू-भागों में भी हिंदू समाज बड़ी संख्या में एकत्रित हो पूरे उत्साह से भगवान परशुराम की जयंती मनाते हैं।

यह पावन पर्व सभी को अन्याय, अनीति, अत्याचार से लड़ने तथा साहस, शौर्य, धर्म और त्याग के आदर्श को जीवन में अपनाने की प्रेरणा लेकर आता है। ❑

सम्राट बिंबसार को सत्य का स्वरूप जानने की इच्छा हुई। उन्होंने भगवान महावीर से कहा—"भगवन्! मैं सत्य को जानना चाहता हूँ, उसको प्राप्त करना चाहता हूँ। उसे प्राप्त करने के लिए मैं किसी भी ऊँचाई तक पहुँच सकने में सक्षम हूँ।" सम्राट की बात सुनकर भगवान महावीर को लगा कि दुनिया को जीतने वाला सम्राट सत्य को भी उसी प्रकार जीतने का इच्छुक है। अहंकार के वशीभूत होकर वह सत्य को भी क्रय करने की वस्तु मान बैठा है और उसे उसी तरह प्राप्त करने का इच्छुक है।

उन्होंने बिंबसार को समझाया—"पुत्र! सत्य को न तो खरीदा जा सकता है और न उसे दान या भिक्षा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सत्य कोई राज्य भी नहीं कि जिस पर आक्रमण करके तुम विजय प्राप्त कर लो। सत्य को प्राप्त करने के लिए अहं को गलाना पड़ता है और अहंकारशून्य होने पर ही सत्य का बोध होता है।"

बिंबसार को अपनी गलती का अनुभव हो गया।

आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के विकास पर भी दें ध्यान

आज व्यक्ति भौतिकता की चकाचौंध में जीवन को सतही तौर पर जीने के लिए अभिशप्त है। अपने पुरुषार्थ के चरम पर वह सांसारिक रूप में कहने योग्य सफलता एवं उपलब्धियों को तो प्राप्त कर रहा है, लेकिन जीवन में उस संतुष्टि एवं शांति को नहीं अनुभव कर पाता, जो इनके साथ अपेक्षित थी।

वह जीवन के सर्वोपरि वास्तविक उद्देश्य को नहीं समझ पा रहा है और एक अर्थपूर्ण जीवन से वंचित है। इस बिंदु पर समाधान के रूप में एस.क्यू. अर्थात आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता की चर्चा प्रासंगिक हो जाती है, जिसे मानवीय संभावनाओं के विकास में आई.क्यू. एवं ई.क्यू. को समाहित करती एक अभिनव अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

आई.क्यू. अर्थात बुद्धिलब्धि की खोज बीसवीं सदी के प्रारंभ में हुई थी, जिसे हमारी तार्किकता एवं नियमबद्ध समस्या-समाधान करने की बौद्धिक क्षमता के रूप में माना गया। यही व्यक्ति को बुद्धिमान या मंदबुद्धि कहने का पैमाना बना। मालूम हो कि आई.क्यू. का परीक्षण स्टैनफोर्ड-बिनेट बुद्धि पैमाने पर किया जाता है, जिस पर 20वीं सदी के सबसे प्रतिभावान वैज्ञानिक आइन्स्टीन के आई.क्यू. को 160 के लगभग आँका गया।

ई.क्यू. अर्थात इमोशनल इंटेलिजेंस हमारे भावनात्मक गुणांक को दरसाता है। सन् 1995 में डैनियल गोलमैन की पुस्तक 'इमोशनल इंटेलिजेंस : व्हाय इट कैन मैटर मोर देन आई.क्यू.' के साथ यह अवधारणा लोकप्रिय हुई, जिसने इनसान के हृदय या भावना में निहित बुद्धिमत्ता पर नूतन प्रकाश डाला और स्पष्ट किया कि ई.क्यू. में स्व-जागरूकता, स्व-नियंत्रण के साथ परस्पर विश्वास, सहानुभूति और दूसरों की भावनाओं के प्रति उचित प्रतिक्रिया देने की क्षमता निहित होती है, जो आई.क्यू. में संभव नहीं होती और यह व्यावहारिक जीवन में सफलता का एक निर्णायक आधार बनती है।

एस.क्यू. अर्थात स्प्रिचुअल इंटेलिजेंस, जीवन के उच्चतर मूल्यों, स्थायी उद्देश्यों व स्वयं के अचेतन पहलुओं तक पहुँचने व समझने की क्षमता है, जो अधिक रचनात्मक जीवन जीने की क्षमता को सुनिश्चित करती है। इसमें आई.क्यू. व ई.क्यू. दोनों समाहित रहते हैं।

एस.क्यू. में विनम्रता, लीक से हटकर सोचने की क्षमता, उन ऊर्जाओं तक पहुँच सम्मिलित है, जो अहंकार से परे, मात्र मैं और मेरी की दैनंदिन चिंताओं से ऊपर उठकर जीने की संभावनाओं के साथ व्यक्ति को जोड़ती है। एसक्यू का जीवन के उन चरम अनुभवों से सीधा संबंध रहता है, जिनसे लोग जीवन में कभी-न-कभी किसी-न-किसी रूप में रूबरू हुए होते हैं।

जिन क्षणों में वे अस्तित्व के गहनतम सत्य से रूबरू होते हैं, उन पलों में वे एक अद्भुत एकता, सौंदर्य, प्रेम एवं शांति का अनुभव करते हैं। हालाँकि ये पल प्रायः अचेतन रूप से घटित होते हैं। इनको सचेतन रूप में जीने की प्रक्रिया अध्यात्म विज्ञान के दायरे में आती है।

इसके अंतर्गत स्प्रिचुअल एंटेलिजेंस के रूप में बुद्धिमत्ता का एक उच्चतर आयाम उद्घाटित

होता है, जो जीवन के गहनतम मूल्य, अर्थ एवं गुणवत्ता को व्यक्त करता है।

एक भौतिक विज्ञानी, दार्शनिक एवं प्रबंधन विचारक दानाह जोहर ने सबसे पहले सन् 1997 में स्प्रिचुअल इंटेलिजेंस की अवधारणा का प्रतिपादन किया था व आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के 12 आयामों पर प्रकाश डाला, जो हैं—आत्मजागरूकता, सहजता, दूरदर्शिता एवं मूल्यपरकता, समग्रता, करुणा, विविधता में एकत्व की भाव दृष्टि, क्षेत्र-स्वतंत्रता, आत्मजिज्ञासा, पुनर्रचना की क्षमता, प्रतिकूल परिस्थितियों में सकारात्मक भाव एवं विनम्रता।

इस तरह एस.क्यू. को बुद्धिमत्ता का श्रेष्ठतम एवं समग्र प्रारूप कह सकते हैं, जिसमें व्यक्ति अपने संकीर्ण स्वार्थ एवं अहंकार से ऊपर उठकर उच्चतर विधान के साथ लय में आबद्ध होता है, जहाँ ज्ञान, करुणा, अंतर्प्रज्ञा, सकारात्मकता, सेवा, सहकार जैसे सद्गुण स्वतः ही प्रस्फुटित होते हैं।

नैतिकता एवं सदाचार यहाँ स्वतः ही जीवन के अंग बनते हैं। जीवन की सार्थकता यहाँ सहज रूप में स्थान पाती है और व्यक्ति विवेक के अधीन एक स्व-अनुशासित जीवन जीने के लिए प्रेरित होता है, जिसकी परिणति एक शांति-सुकून एवं आनंद भरे जीवन के रूप में होती है।

निश्चित रूप से यह चेतना की उच्चतर अवस्था की द्योतक बुद्धिमत्ता है, जो द्वंद्वात्मक भावदशा से ऊपर उठने की क्षमता दरसाती है। इसके साथ नित्य के जीवन क्रम, परस्पर व्यवहार एवं चिंतन-आचरण—एक पावनता के भाव से स्नात् होते हैं। इसके साथ ईश्वरप्रदत्त संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए व्यक्ति अपने सर्वांगीण उत्कर्ष को प्राप्त करता है और शांति के साम्राज्य में प्रवेश होता है।

इनके साथ व्यक्ति मैं, मेरा व दैनिक जीवन के लौकिक प्रपंचों से ऊपर उठकर एक उच्चतर एवं पारमार्थिक भाव में स्थिर होकर कार्य एवं जीवनयापन करना सीखता है।

निश्चित रूप में प्रार्थना, ध्यान आदि इसके स्वाभाविक अंग हैं, जिनके साथ व्यक्ति एक उच्चतर शक्ति के संपर्क-सान्निध्य में आता है और जीवन के प्रति एक अर्थपूर्ण, गंभीर एवं सर्वांगीण समझ को विकसित करता है और नैतिकता आधारित मूल्यनिष्ठ एवं गुणवत्तापरक जीवन जीता है।

आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता व्यक्ति को कठिन परिस्थितियों में शांत, स्थिर, सम एवं लक्ष्यकेंद्रित रहने की क्षमता प्रदान करती है। जीवन के तूफानों के बीच भी ऐसा व्यक्ति अपना संतुलन बनाए रखता है और दूसरों के लिए भी कठिन समय में प्रकाशस्तंभ की भाँति पथ-प्रदर्शक बनता है। इस तरह आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता—ई.क्यू. और आई.क्यू. को भी समाहित करती हुई सकारात्मक सोच एवं परिष्कृत दृष्टिकोण के साथ द्वंद्वों के पार जाने की क्षमता प्रदान करती है। इसके साथ समस्या की तह तक जाने वाली तत्त्वदृष्टि देती है। व्यक्ति स्थिरप्रज्ञता की ओर बढ़ता है और उसमें विषाद को योग में बदलने की समझ विकसित होती है। यह वर्तमान में जीना सिखाती है और जीवन में हर तरह की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के इस महत्त्व को देखते हुए व्यक्ति को इसके सचेष्ट विकास पर ध्यान देना चाहिए।

स्वाध्याय-सत्संग के साथ चिंतन-मनन एवं आत्ममंथन इसके प्राथमिक चरण हैं। जिसमें व्यक्ति की आध्यात्मिक अंतदृष्टि का विकास होता है। इनके साथ ध्यान, योगाभ्यास, प्रार्थना एवं डायरी लेखन के प्रयोग इसमें और गहनता लाते हैं। निस्संदेह रूप में गुरु का सान्निध्य इसमें एक निर्णायक तत्त्व रहता है और आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता जीवन-साधना का पर्याय बनती है, जिसे किसी कर्मकांड से आबद्ध

नहीं किया जा सकता। यह एक आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि एवं सात्त्विक जीवनशैली से पुष्ट होती है और सेवा, करुणा, उदारता-सहिष्णुता, संयम, सदाचार, कृतज्ञता एवं मूल्यनिष्ठा जैसे सद्गुणों के साथ विकसित होती है।

इस तरह हर सजग व्यक्ति को अपनी आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता को बढ़ाने में प्रयासरत रहना चाहिए; क्योंकि इसी आधार पर वह जीवन की जटिल समस्याओं का आत्यंतिक समाधान खोजते हुए आत्मशांति को प्राप्त हो सकता है। इसी के आधार पर वह बौद्धिक एवं भावनात्मक बुद्धिमत्ता का बेहतरीन उपयोग करते हुए अपनी पूरी क्षमता को साकार होते देख सकता है तथा अपने वास्तविक स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए आत्मसाक्षात्कार के महत्त्व, उद्देश्य को साकार कर सकता है। ❑

आयुर्वेद के प्रख्यात ग्रंथ 'माधव निदान' के प्रणेता माधवाचार्य वृंदावन में गहन साधना में संलग्न थे। गायत्री के साधक होने के नाते उन्होंने गायत्री महापुरश्चरण करने का संकल्प ले रखा था।

इस क्रम में 11 के करीब गायत्री महापुरश्चरण वे संपन्न भी कर चुके थे। जब इतने वर्षों की तपस्या का कोई परिणाम न निकला तो माधवाचार्य के मन में बहुत खिन्नता हुई। निराशा के उन क्षणों में उन्होंने गायत्री-साधना को त्याग दिया व काशी चले गए।

काशी में उनकी भेंट एक अघोरी तांत्रिक से हुई, जिसने उनकी खिन्नता का लाभ उठाते हुए उन्हें भैरव पूजा का विधान बताया। कहा कि एक वर्ष तक उस साधना को करने पर सिद्धि का मिलना सुनिश्चित है। माधवाचार्य ने धैर्यपूर्वक एक वर्ष की साधना संपन्न की तो उन्हें भैरव की आवाज सुनाई पड़ी, जो उनसे बोली कि वे वर माँगें।

माधवाचार्य ने आँखें खोलीं तो उन्हें कोई दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने प्रश्न किया—"आप कहाँ हैं? आपके दर्शन हों तो मैं वरदान माँगूँ।" उत्तर मिला—"आप गायत्री-उपासक रहे हैं। आपके मुखमंडल पर इतना तेज व्याप्त है कि मैं आपके सम्मुख नहीं आ सकता। आपको जो माँगना है, ऐसे ही माँग लें।"

माधवाचार्य ने अचरजभरे स्वर में उनसे पूछा—"यदि गायत्री पुरश्चरणों से इतना तेज उत्पन्न होता है तो उसकी अनुभूति मुझे क्यों नहीं हुई?" उत्तर में भैरव ने उन्हें, उनके पिछले 11 जन्म दिखाए—जिनमें उनके द्वारा अनेकों पापकर्म हुए थे। एक-एक गायत्री पुरश्चरण द्वारा 1-1 जन्म के संचित पापों का निराकरण हो गया था। माधवाचार्य ने भैरव को धन्यवाद दिया व कहा—"मैं आपसे किसी वरदान का आकांक्षी नहीं हूँ देव! मैं वापस वृंदावन लौटकर गायत्री-साधना संपन्न करूँगा।" उन्होंने लौटकर 12वाँ पुरश्चरण किया व माँ गायत्री के दर्शन के साथ ही आत्मसाक्षात्कार को उपलब्ध हुए।

जीवन में अनावश्यक तनाव न पालें

कठिन एवं विकट-विषम परिस्थितियाँ जीवन का स्वाभाविक अंग हैं, जो अस्तित्व की महायात्रा में आवश्यक सबक व अनुभव देकर जीवन को अधिक सुगढ़ एवं अर्थपूर्ण बनाती हैं। कुछ काल तक जीवन को झकझोरने वाली इन परिस्थितियों की चुनौती अस्थायी ही रहती है, लेकिन व्यक्तित्व गठन में इनका अपना महत्त्व रहता है। अत: इनको लेकर अनावश्यक तनाव न पालें व इनको आवश्यकता से अधिक महत्त्व न दें, कि ये जीवन का सारा रस एवं सार सोखकर इसको आनंद से वंचित कर दें।

जीवन को अत्यधिक गंभीरता से लेने पर हम जीवन को सम्यक रूप से नहीं जी पाते व जीवन के सौंदर्य व आनंद से वंचित रह जाते हैं। जिन चीजों को हम बहुत महत्त्वपूर्ण मान बैठते हैं और अनुपात से अधिक बड़ा देखने की भूल करते हैं, वे कुछ समय पश्चात अधिक महत्त्व की नहीं रह जातीं।

यदि हम अपने जीवन में अतीत की घटनाओं पर ही एक दृष्टि डालें तो स्पष्ट हो जाता है कि जिन घटनाओं के मध्य हम गंभीर तनाव, उद्विग्नता एवं भय के मध्य जीने के लिए अभिशप्त अनुभव कर रहे थे, वे आज स्वप्नवत् प्रतीत होती हैं। अत: वर्तमान को अपनी परिपूर्णता में जिएँ। सफर का आनंद लें और मंजिल की अधिक चिंता न करें। बढ़ते रहेंगे तो मंजिल भी मिलकर रहेगी।

मंजिल के पाने पर फिर उसका अधिक देर के बाद कोई बहुत अर्थ एवं महत्त्व नहीं रह जाता। यह जीवन का एक विचित्र सत्य है कि मन को दूर के ढोल ही सुहावने लगते हैं, पास आने पर एवं चीज के हस्तगत होने पर फिर उसमें रुचि कम हो जाती है।

अत: वास्तविक आनंद सफर के हर पल को जीने में है, न कि मंजिल पर पहुँचने में। इसका अर्थ यह भी है कि जीवन में सदा भविष्य की तैयारी में ही चिंतित न रहें, जो हो सकता है कि योजना के अनुरूप कभी घटित ही न हो पाए। फिर जीवन की अनिश्चितता भी एक बड़ा कारक है। यहाँ कभी भी, किसी भी पल—कुछ भी घटित हो सकता है।

ऐसे में भविष्य की अधिक चिंता न करते हुए हर दिन, हर पल को ऐसे जिएँ कि जैसे वर्तमान पल ही ईश्वर द्वारा प्रदत्त सर्वोत्तम अवसर है। इसका श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए स्वत: ही हम उज्ज्वल भविष्य की नींव रख रहे होंगे।

जबकि भविष्य की चिंता में वर्तमान कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता हमें अंधकारमय भविष्य में ही धकेल रही होगी। फिर जीवन को अत्यधिक गंभीरता से लेने पर तनाव और उद्विग्नता जीर्ण रूप से घर कर सकती हैं, जो तन-मन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए स्वास्थ्य संकट का कारण बन सकती हैं।

इसका आशय यह भी है कि हम बहुत अधिक स्वयं के बारे में न सोचें और हर चीज में परफेक्शन अर्थात पूर्णता के असंभव से लक्ष्य को लेकर चिंता न करते रहें; क्योंकि यहाँ ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी पूर्ण नहीं है।

पूर्णता की यात्रा क्रमिक रूप से आगे बढ़ती है, जिसमें असफलताएँ, गलतियाँ, गिरावट यहाँ तक कि पतन के दौर का भी सामना करना पड़ सकता है। अत: जो है, उसी में संतुष्ट रहें और

इससे बेहतर होने के प्रयास में लगे रहें, कार्य का दबाव बनाए रखें न कि तनाव का, जिससे हर पग उत्कर्ष की ओर बढ़ता रहे।

अत: जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाएँ और स्वयं की छोटी-मोटी गलतियों व असफलताओं पर हँसना सीखें। तनाव को हावी न होने दें तथा सकारात्मक जीवन जिएँ। अपनी भूल-चूकों से आवश्यक सीख लेते हुए आगे बढ़ें। अपने जीवन की प्राथमिकताओं को समझें व अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहें और प्राथमिकताओं के आधार पर इनको निपटाते रहें।

प्रपंच, बे-मतलब की चर्चा व दुर्व्यसनों में समय बरबाद न करें तथा किसी तरह की अनावश्यक चिंता को प्रश्रय न दें। दूसरों से तुलना व कटाक्ष से बचें; क्योंकि दूसरों की सफलता व उपलब्धियों से तुलना जीवन को आनंद से वंचित करती है और व्यक्ति को एक अंधी दौड़ में उलझा देती है। जबकि समझदारी दूसरों की सफलता से प्रेरणा लेने में है, अपनी मौलिकता को पहचानकर इसे निखारने में है और इसके इर्द-गिर्द अपनी पहचान व प्रतिभा के विकास में है।

दूसरों से तुलना हमें इस मौलिक विकास के वरदान से वंचित कर देती है और हम दूसरों की कार्बन कॉपी बनने के लिए अभिशप्त होते हैं, जिसके आधार पर कभी भी शांति एवं आनंद के प्रसून नहीं खिल सकते। साथ ही स्वीकार करें कि जीवन अनिश्चितताओं से भरा हुआ है और बहुत सारी चीजें हमारे नियंत्रण से बाहर हैं। ऐसी परिस्थितियों का सामना करें और जो आपके पास उपलब्ध है, उसका श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए आगे बढ़ें।

जीवन के अंतिम सत्य मृत्यु के संदर्भ में भी ध्यान रखें, यह कभी भी दस्तक दे सकती है और एक पल में सब कुछ शून्य की स्थिति में ला सकती है। अत: हर दिन व हर पल का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए इसकी भी तैयारी करते रहें, जो इस नश्वर जीवन में सार्थकता एवं नवीनता का एक नया अनुभव संचार करने वाला प्रयोग सिद्ध होगा।

जीवन के अनावश्यक भार को हलका करने के लिए अस्तित्व के यथार्थ को उद्घाटित करने वाले साहित्य का स्वाध्याय करें। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव का जीवन के हर पक्ष को प्रकाशित करने वाला युगसाहित्य इस संदर्भ में संजीवनी से कम नहीं है। इसका नित्य स्वाध्याय करें और इसके साथ उनके ऑडियो-वीडियो सत्संग का लाभ लिया जा सकता है।

इसके साथ सकारात्मक लोगों का संग-साथ करें, जो आपको प्रेरित करते हों व आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हों। उन लोगों व चीजों से दूर रहें, जो आपको नीचा दिखाने की चेष्टा करते हों या आपकी चेतना को दूषित करते हों। इस तरह अपने जीवन के महत्त्व को समझें।

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्।

अर्थात जो अंदर हो, वही बाहर प्रकट करो। जो बाहर कहते हो, वही भीतर रखो।

यह अनावश्यक चिंता व तनाव में बरबाद करने के लिए नहीं है। इसके छोटे-छोटे क्षणों का आनंद लेते हुए, अपने प्रियजनों के साथ बेहतर पलों को जीते हुए, छोटी-छोटी सफलताओं का उत्सव मनाते हुए, इसमें निहित संभावनाओं को साकार करते हुए आगे बढ़ें।

इसी तरह छोटी-बड़ी विफलताओं एवं फिसलनों से आवश्यक सबक लेते हुए इन्हें छोड़ दें और साथ ही ईश्वर का धन्यवाद ज्ञापित करें कि उन्होंने बीज रूप में वे सारी संभावनाएँ भरकर हमें धरती पर भेजा है और उसकी ईश्वरीय योजना का हिस्सा बनने का सौभाग्य प्रदान किया है। ❑

साधना

कहना यह होगा कि ये शरीर, मन और धन सभी भौतिक और आंतरिक विकास के लिए उपयोगी साधन हैं। साधन वही होता है, जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। जब तक इनका उपयोग केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधा तक सीमित रहता है, तब तक ये किसी बड़े उद्देश्य के लिए उपयोगी नहीं हो सकते। आत्मिक विकास के लिए संयम, नियंत्रण, सेवा, अनुशासन, परिश्रम जैसे सद्गुणों की आवश्यकता होती है।

कोई भी साधक जब तक जीवन की दिशा सही नहीं करता, साधना आरंभ नहीं कर सकता। सबसे पहले जीवन को सरल, पवित्र और संयमित बनाना जरूरी है। बिना इसके साधना का कोई परिणाम नहीं निकलता। आध्यात्मिक जीवन का प्रथम चरण है—सद्विचारों को आचरण में लाना। मन को नियंत्रित करना और समय का सदुपयोग करना ही साधना का पहला कदम है।

जो व्यक्ति जीवन में विवेक, संयम, त्याग और सेवा के सिद्धांतों पर चलता है, वही आगे चल कर योग, तप, ध्यान और ब्रह्मविद्या के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। साधना कोई चमत्कार नहीं है, यह तो जीवन की एक सतत प्रक्रिया है। रोजमर्रा के काम-काज में भी जब साधक ईमानदारी, श्रद्धा, सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा से जीवन जीता है, तभी उसे आगे बढ़ने का अधिकार मिलता है।

पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, मंत्र-जप और ध्यान बाहरी रूप हैं। उनका प्रभाव तभी होता है, जब जीवन भीतर से बदले। जो व्यक्ति अपने स्वभाव को नियंत्रित करता है, अपनी इच्छाओं को सीमित करता है और अपने कर्त्तव्यों को प्राथमिकता देता है, वही साधना के पथ पर आगे बढ़ता है।

जो व्यक्ति केवल बाहरी अनुष्ठानों में उलझा रहता है और अपने जीवन को नहीं सुधारता, वह साधना के लक्ष्य से भटक जाता है। इसलिए सबसे पहले जीवन को संयमित, पवित्र और उद्देश्यपूर्ण बनाएँ। दिनचर्या नियमित रखें, आहार सादा रखें और अपने कर्त्तव्यों का ईमानदारी से पालन करें। यही सच्ची साधना की शुरुआत है। □

ऋषि गर्ग शास्त्रों पर टीका लिख रहे थे। भक्ति का उल्लेख आने पर उन्होंने उस पर टिप्पणी की—मनुष्य को कृतकृत्य करने वाली एक दिव्य अनुभूति अनुदान ईश्वरप्रदत्त है। उसका नाम है—ईश्वरभक्ति। जो भक्ति का आश्रय लेते हैं, अपनी आत्मीयता को विस्तृत करते हैं—वे समस्त विश्व के कल्याण का कारण बन जाते हैं। भक्ति ही मुक्ति का आधार है और ईश्वर से साक्षात्कार का माध्यम भी।

एक योगी का प्रेतात्मा से संवाद

सदियों तक विज्ञान भूत-प्रेत आदि के अस्तित्व को नकारता रहा है, पर अब विज्ञान और विचारशील विज्ञानी भी अदृश्य तत्त्वों के अस्तित्व को स्वीकारने लगे हैं।

भूत-प्रेतों के शरीर सूक्ष्म हवामय होते हैं, इसलिए वे कहीं भी, कभी भी पल भर में भ्रमण कर सकते हैं। अब एक प्रश्न यह उठता है कि क्या हम प्रेतात्माओं के साथ संपर्क बना सकते हैं, उनसे संवाद कर सकते हैं या उनके साथ कोई व्यवहार कर सकते हैं?

प्रेतात्माओं से जुड़ी ऐसी कई घटनाएँ और कहानियाँ हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि प्रेतात्माओं से संपर्क किया जा सकता है, और उनके साथ संवाद और व्यवहार भी किया जा सकता है। एक ऐसी ही घटना का जिक्र यहाँ किया जा रहा है। महाराष्ट्र के एक सुदूर क्षेत्र में एक योगी ब्राह्ममुहूर्त में साधना के लिए बैठे थे कि तभी उन्हें अपने आस-पास किसी अजीब तत्त्व की मौजूदगी का एहसास हुआ। उन्होंने अपनी नजरें उठाईं तो उन्हें अपने सम्मुख एक रुपहली रेखाओं से बनी मानवीय आकृति दिखाई पड़ी।

वह आकृति जमीन से लगभग तीन फीट ऊपर हवा में स्थिर थी। उस मानवीय आकृति ने उस योगी का अभिवादन किया और उस योगी को अपने पूर्वजन्म, मृत्यु और उसके बाद प्रेत-योनि में होने की सारी घटनाएँ विस्तारपूर्वक बताईं। तब उस योगी ने बड़ी निर्भीक और प्रेमपूर्ण वाणी में उस प्रेतात्मा के साथ संवाद शुरू किया। उस योगी ने प्रेतात्मा से पूछा—"आपने किस हेतु से प्रेरित होकर मेरे सम्मुख प्रकट होने की कृपा की है?"

प्रेतात्मा ने कहा—"दो कारणों से। एक तो मनुष्यों से प्रेम होने के कारण और दूसरा मनुष्यों में भी आप साधारण मनुष्य नहीं हैं। आप एक सच्चे योगी हैं, महात्मा हैं, आप अपनी निरंतर साधना से शुद्ध, पवित्र हो सच्चे मन से भगवान की आराधना में लगे हैं। आप जैसे योगी के सान्निध्य को पाकर मुझे भी शांति की अनुभूति होती है और मुझे यह भी लगता है कि आपकी कृपा से मैं प्रेत-योनि से भी मुक्त हो सकती हूँ। इसलिए मैं आपके सम्मुख प्रकट हुई हूँ।"

तब योगी ने फिर प्रश्न किया—"आपने अपनी मृत्यु के बाद किस प्रकार के परिवर्तन को अनुभव किया?" प्रेतात्मा ने कहा—"मैंने अपने स्थूलशरीर का क्षय होते ही स्थूलशरीर के संबंधों का क्षय अनुभव किया और तत्पश्चात सांसारिक, स्थूल अथवा पार्थिव चीजों का उपयोग अथवा उपभोग करने की अशक्ति महसूस की।" "फिर आप किसी भौतिक पदार्थ के प्रति आकर्षित क्यों होती हैं और उसका उपयोग कैसे करती हैं?" योगी ने पुनः प्रश्न किया।

अब प्रेतात्मा ने थोड़ा ठहरकर कहा—"हम प्रेतात्माओं के पास मनुष्य द्वारा निर्मित भौतिक वस्तुओं के परमाणुओं का विघटन करने की शक्ति होती है। हम स्थूल इंद्रियों के अभाव में भौतिक पदार्थों को मनुष्यों की तरह तो ग्रहण नहीं कर सकते, पर हम उन भोग पदार्थों पर दृष्टिपात करके उनका उपभोग करने जैसा सुख पाते हैं। हमारे लिए उन वस्तुओं पर दृष्टिपात करना ही उनका उपभोग करना है।" "क्या प्रेतात्माएँ किसी को भी हानि या मदद पहुँचा सकती हैं?" योगी ने पुनः प्रश्न किया।

"सभी प्रेतात्माएँ एक जैसी नहीं होतीं। हाँ! पूर्वजन्म में यदि किसी प्रेतात्मा का किसी व्यक्ति के साथ या उस व्यक्ति का प्रेतात्मा के साथ बुरा अथवा शत्रुवत् व्यवहार रहा है तो वह प्रेतात्मा उस व्यक्ति को हानि पहुँचा सकती है। यह बात मनुष्यों की दुनिया में जैसी होती है, वैसी ही हमारी दुनिया में भी है। प्रेतात्माएँ द्वेषयुक्त व्यवहार मनुष्य या पशु के साथ भी करती हैं। कुछ प्रेतात्माएँ मनुष्यों की मदद भी करती हैं। हम प्रेतात्माएँ भौतिक पदार्थों का सर्जन तो नहीं कर सकतीं, पर उन्हें कहीं भी, किन्हीं दूसरे स्थानों से लाकर पलभर में ही प्रकट कर सकती हैं।"

थोड़ा ठहरकर वह प्रेतात्मा पुनः बोली—"मैं और एक साथी प्रेतात्मा गुजरात राज्य के एक प्रसिद्ध मंदिर गए। वहाँ भीड़ में हमने एक भक्त को उसके गुलाबी रंग के सूक्ष्म तेजोवलय द्वारा पहचान लिया। वह गरीब था। उसने दो दिनों से कुछ नहीं खाया था, ऐसा हमें पता चला। मेरे साथी प्रेतात्मा ने ऐसा कार्य किया कि देवी माँ के चरणकमलों में भक्तों द्वारा चढ़ाए गए कुछ रुपये उड़कर उस भूखे और गरीब भक्त के हाथों में जा पड़े। उस भक्त ने इसे अपने लिए देवी माँ की कृपा व प्रसाद समझा और उनको रख लिया। यह देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा, पर हमारे लिए तो वह एक सामान्य कार्य और सामान्य घटना ही थी।"

वह प्रेतात्मा बोली—"एक दूसरे प्रसंग में, मारवाड़ के सुप्रसिद्ध श्रीनाथ जी के मंदिर में एक दूसरी प्रेतात्मा ने कुछ समय तक वहाँ का बड़ा घंटा बजाया था। फिर थोड़ी देर के बाद वहाँ शंखों का निनाद भी सुनाई देने लगा। किसी मनुष्य की मदद के बगैर नगाड़े भी बजने लगे। वहाँ मौजूद लोगों ने उसे दिव्य अनुभूति माना। हम भी भगवान के मंदिर में तभी ऐसा कर पाते हैं, जब ऐसा करने के लिए ईश्वरीय आदेश हो।"

उस प्रेतात्मा ने उस योगी को पुनः एक दूसरा प्रसंग सुनाते हुए कहा—"इसी तरह एक न्यायाधीश के पुत्र को गणित की परीक्षा के पेपर में अगर एक प्रेतात्मा ने उत्तर लिखने में मदद न की होती तो उसकी आगे की पढ़ाई में बड़ी बाधा आ सकती थी।" तभी योगी ने एक और रोचक प्रश्न किया—"क्या आप अपनी वर्तमान अवस्था को मनुष्य जीवन से बढ़कर मानती हैं?"

प्रेतात्मा ने उत्तर दिया—"पृथ्वी के मनुष्यों को प्रेतात्मा की सृष्टि का सच्चा ज्ञान नहीं है। आप हम सबको हीन मानते हो और हमसे डरते भी हो, पर आपको पता नहीं है की उत्क्रांति के विकास क्रम में हरेक जीव को इस अनुभव से होकर ही गुजरना पड़ा है। सुवर्ण का उदाहरण देखें तो उसे अलंकार का रूप देने से पूर्व कई कठिन परीक्षाओं से होकर गुजरना पड़ता है। उसी तरह आध्यात्मिक परमपद को पाने से पहले हर जीव को तरह-तरह की अनुभूतियों से गुजरना पड़ता है। हाँ! अभी प्रेत-योनि से मुक्त होकर आध्यात्मिक परमपद पाने की उत्कंठा हममें तीव्र हो रही है और आप निश्चित रूप से इसमें मेरी मदद कर सकते हैं।"

अपनी बात स्पष्ट करते हुए उसने कहा—"आप यदि मेरे नाम का संकल्प लेकर अपनी साधना-उपासना का कुछ अंश अर्पित करते रहें तो मैं बहुत शीघ्र प्रेत-योनि से मुक्त होकर नूतन शरीर धारण कर तीव्र भगवद्उपासना करते हुए अपनी मुक्ति व आध्यात्मिक परमपद पाने के लिए पुरुषार्थ कर सकता हूँ।"

उस योगी ने हामी भरते हुए कहा—"क्यों नहीं! मैं आपकी प्रेत-योनि से मुक्ति के लिए अपनी साधना का एक अंश आपके मुक्त होने तक आपके नाम अवश्य अर्पित करता रहूँगा।" वह प्रेतात्मा प्रसन्न होकर उस योगी का पुनः अभिवादन करती हुई वहाँ से अदृश्य हो गई। अद्भुत है सूक्ष्म शरीरधारी जीवों की दुनिया। ❑

जीवन का उत्थान – लक्ष्य बने महान

प्रगति की दिशा में पहला कदम है—महान लक्ष्य की स्थापना। प्रत्येक महान पुरुष ने, चाहे वह वैज्ञानिक हो, संत हो या समाज-सुधारक, अपने जीवन में ऊँचे विचारों को धारण कर जीवन को एक दिशा दी है। मनुष्य की ऊर्जा और सृजनशीलता तभी प्रकट होती है, जब वह किसी बड़े लक्ष्य को अपनाता है।

भौतिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक या आध्यात्मिक—किसी भी क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए उच्च आकांक्षा का होना आवश्यक है। महानता का मार्ग केवल साधनों या परिस्थितियों से नहीं बनता, वह बनता है भीतर की ज्वाला—एक ऐसी प्रेरणा से, जो आत्मा को झकझोर दे। जब हम अपने लिए कोई आदर्श बनाते हैं तो हमारा संपूर्ण जीवन उसकी पूर्ति की ओर केंद्रित हो जाता है। यही जीवन को सार्थक और उपयोगी बनाता है।

बच्चों के जीवन में भी यदि बचपन से ही प्रेरणास्पद आदर्श रखे जाएँ और उन्हें बताया जाए कि वे क्या बन सकते हैं तो वे भी ऊँचाइयों को छू सकते हैं। इसके लिए माता-पिता और शिक्षक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे बच्चों में आत्मबल, नैतिकता और सेवा-भाव के बीज बोएँ; क्योंकि कोई भी परिवर्तन बाहर से नहीं, भीतर से आता है। जब व्यक्ति भीतर से प्रेरित होता है और अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण करता है, तभी वह जीवन में असाधारण उपलब्धियाँ प्राप्त करता है।

इसलिए यदि हम जीवन में कुछ महान करना चाहते हैं तो हमें अपने भीतर महान आकांक्षाएँ जगानी होंगी। मनुष्य के जीवन में वास्तविक उत्कर्ष तभी संभव है—जब उसका तन, मन और विचार सभी पवित्रता के साथ एक महान उद्देश्य के प्रति समर्पित हों।

बाहरी परिस्थितियों में चाहे जैसी भी बाधाएँ हों, यदि भीतर की चेतना में सच्ची सेवा-भावना और साधना की तपस्या है तो जीवन का कायाकल्प निश्चित है। शरीर, मन और बुद्धि को ऊर्जस्वित बनाकर समाज और राष्ट्र की सेवा में लगाना ही सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत है। यह सेवा केवल बाहरी रूप से किसी को कुछ देने की नहीं, बल्कि आत्मशक्ति को जाग्रत करके और उसमें ईश्वर की प्रेरणा पाकर दूसरों के जीवन को उन्नत करने की प्रक्रिया है।

ध्यान और तप से अर्जित शक्ति को केवल अपने लिए न रखकर जब व्यक्ति जनकल्याण में लगाता है, तभी उसका जीवन सार्थक बनता है। जो व्यक्ति केवल अपने लाभ और सुविधा की सोच में डूबा रहता है, वह सच्चे अर्थों में कभी भी आत्म-विकास नहीं कर सकता। वहीं जो दूसरों के कल्याण हेतु अपने विचारों, कर्मों और ऊर्जा को समर्पित करता है, वही व्यक्ति समाज में प्रेरक बनता है।

ऐसी महान प्रेरणा के लिए पहले अपने भीतर के दोषों को दूर करना पड़ता है—अहंकार, ईर्ष्या, आलस्य, क्रोध, लोभ जैसे विकारों का शुद्धीकरण आवश्यक है। जब अंत:करण निर्मल होता है, तभी विवेक जाग्रत होता है और व्यक्ति सही दिशा में कार्य करने योग्य बनता है।

ऋषियों ने इसी दिशा में जीवन को साधना और सेवा का माध्यम बनाकर लोक-मंगल के यज्ञ

में स्वयं को अर्पित किया। उनका जीवन इस बात का उदाहरण है कि यदि मनुष्य स्वयं को परिष्कृत कर ले, तो वह समाज और विश्व को नई दिशा दे सकता है।

सच्चे और टिकाऊ परिवर्तन की शुरुआत आत्मनिरीक्षण और अपने दृष्टिकोण की समीक्षा से होती है। मात्र बाहरी साधनों से जीवन में गहराई नहीं आती, उसके लिए अंत:करण की शुद्धि, चिंतन की स्पष्टता और सही दिशा में निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। अगर सफलता प्राप्त करनी है तो केवल परिस्थितियों को दोष देने या भाग्य को कोसने से कुछ नहीं होगा। परिवर्तन का बीज भीतर बोया जाता है—जब व्यक्ति अपने विचारों को उन्नत करता है, तभी वह अपने व्यवहार और कार्यशैली को उत्कृष्ट बना पाता है।

जब तक व्यक्ति मन में छिपे स्वार्थ, लोभ, ईर्ष्या, मोह आदि को नहीं त्यागता, तब तक जीवन में वास्तविक प्रगति संभव नहीं। आत्मविकास का मार्ग भीतर की सफाई से होकर जाता है। जिनका चित्त निर्मल होता है, वे ही समाज को दिशा देने की क्षमता रखते हैं।

युवाओं को चाहिए कि वे अपने जीवन के लक्ष्य को स्पष्ट करें। यदि वे अपनी ऊर्जा को सही दिशा में लगाएँ—साधना, सेवा और संयम के पथ पर अग्रसर हों तो वे न केवल स्वयं का भविष्य बदल सकते हैं, बल्कि राष्ट्र और विश्व को भी नई दिशा दे सकते हैं।

सामूहिक और सामाजिक परिवर्तन की नींव व्यक्ति के आत्मविकास पर आधारित होती है। जब प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को सुधारने का बीड़ा उठाता है, तभी वह समाज के लिए एक प्रेरक शक्ति बनता है। इसलिए हमें चाहिए कि हम अपने विचारों, व्यवहार और जीवनशैली की समीक्षा करें और संकल्प लें कि हम जीवन को ऊँचे आदर्शों के अनुरूप बनाएँगे। यही जीवन का सच्चा कायाकल्प है। ❑

विशाखा के पौत्र का निधन हो गया। शोकाकुल वह भगवान बुद्ध की शरण में पहुँची। भगवान बोले—"विशाखा! तेरा पौत्र तुझे मिल जाए तो?" विशाखा ने उत्तर दिया—"भगवन्! मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहेगा।" भगवान बुद्ध ने पूछा—"और यदि पूरा श्रावस्ती नगर तुझे मिल जाए तो?"

विशाखा बोली—"तो मेरी प्रसन्नता शतगुणित हो जाएगी।" भगवान बुद्ध बोले—"विशाखा! कल्पना कर कि सारे श्रावस्तीवासी तेरे पुत्र-पौत्र हों और उनमें से एक भी नित्य मरे तो तू सुखी रह सकेगी क्या? तेरा दुःख कितना बढ़ जाएगा। सेवा का सुख चाहिए तो सारा संसार तेरा ही तो है। सबकी सेवा कर, आसक्ति छोड़।"

विशाखा के जीवन की दिशा ही उस उत्तर ने बदल दी।

कौओं की घटती संख्या

पूरी दुनिया के लिए यह एक चिंताजनक बात है कि इस धरती से निरीह पक्षियों की कई प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। विलुप्त होती जा रही इन प्रजातियों को बचाने के लिए किए जा रहे सभी प्रयास अप्रभावी सिद्ध हो रहे हैं। पशु-पक्षियों के अध्ययन में जुटे वैज्ञानिकों और संस्थाओं द्वारा समय-समय पर जो जानकारियाँ एकत्र की जा रही हैं, वे यह साबित करने के लिए काफी हैं कि विलुप्त होती जा रही प्रजातियों को संरक्षित करने के लिए किए जा रहे प्रयास नाकाफी हैं।

जो पशु-पक्षी हमारे घर-आँगन में विचरते थे, वे अब कहीं नहीं दिखते हैं। घर-आँगन में फुदकने वाली चिड़िया या कौए अब नहीं दिखते हैं। मीठी तान सुनाने वाली कोयल की कूक भी अब सुनाई नहीं देती है। पेड़-पौधों की घटती संख्या को लेकर बर्ड लाइफ इंटरनेशनल के विशेषज्ञों ने एशियाई देशों में इस संबंध में अध्ययन किया।

इस अध्ययन में कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलीं और चिंताजनक तथ्य भी सामने आए। एशिया में मुख्य रूप से ढाई हजार से अधिक प्रजातियों के पक्षी पाए जाते हैं, जिनमें से सवा-तीन सौ पक्षी अब विलुप्त होने के कगार पर हैं।

चिंता की बात यह है कि कौआ भी इसी विलुप्त होने वाली प्रजाति में शामिल किया गया है। सिर्फ भारत की बात करें तो यहाँ 73 प्रजातियाँ खतरे में बताई गई हैं। एशिया के अन्य देशों में हालत और भी दयनीय है। हमारे देश में कौओं को काफी महत्त्व दिया गया है। पौराणिक आख्यानों से लेकर वर्तमान सदी में कौए की प्रासंगिकता बनी हुई है।

श्राद्ध पक्ष में तो बाकायदा कौओं को बुला कर खिलाया जाता है। इन परंपराओं के बीच हमें यह बात खटकती है कि कौओं की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। जिन शहरों में पर्यावरणीय दृष्टि से स्थितियाँ अब भी ठीक हैं, वहाँ कौओं को देखा जा सकता है, मगर अधिकांश शहरों में और शहर बनते गाँवों में कौओं की संख्या घटती जा रही है।

प्राकृतिक असंतुलन की मार कौओं जैसे निरीह पक्षियों पर भी पड़ रही है और ये पक्षी बीते समय की बात होते जा रहे हैं। अब बच्चों को कौए की कविता पढ़ाने से पहले खुद को इस बात के लिए तैयार करना पड़ता है कि अगर बच्चे कौए को देखने की जिद करने लगे तो उन्हें क्या जवाब दिया जाएगा। जब उन्हें हम कौआ दिखा नहीं सकते हैं तो हमें क्या हक है, उन्हें कौए की कविता सिखाने का। जिसकी रक्षा हम नहीं कर सके, उसके किस्से-कहानियाँ बच्चों को याद करने के लिए मजबूर करते वक्त हमें आत्मग्लानि होती है।

श्राद्ध पक्ष में कौओं को आवाज तो दी जाती है, मगर यह जानते हुए कि कौए हैं ही नहीं, तो आएँगे कैसे? कमोबेश यह स्थिति कौओं की ही नहीं, हर उस पक्षी की है, जो निरीह है, सरल है और जिसका प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में अहम योगदान है।

विकास की इस परिभाषा में विनाश की आहट भी समाहित है। प्रकृति में प्रतिदिन घुलते जहर से न सिर्फ पेड़-पौधे, बल्कि जीव-जंतु और मनुष्य भी स्वच्छ वायु के लिए त्रस्त होते जा रहे हैं। कौआ गंदगी को साफ करने वाला पक्षी है, मगर मनुष्य

ऐसे पक्षी को ही समाप्त करने वाला बनता जा रहा है।

कौओं की घटती संख्या हमारे लिए ही नहीं, पूरी दुनिया के लिए चिंता का विषय बन गया है। श्रेष्ठता में आगे कौआ कोर्डेटा संघ के वर्ग एब्जकेगम-पैसेरीफार्मिस में आता है। सामान्यत: हमारे देश में इसकी दो प्रजातियाँ पाई जाती हैं। घरों के आस-पास दिखने वाला देशी कौआ होता है, जिसे कोर्वस स्प्लेंडेंस कहा जाता है।

जंगली कौए को कोर्वस मेक्रोरिहकोज कहते हैं। जंगली कौआ पूरी तरह काला होता है। देशी कौआ धूसर रंग का होता है। भगवान कृष्ण के हाथ से माखन-रोटी छीन ले जाने वाले जिस कौए का जिक्र किया गया वह काग देशी कौआ है। वैसे दुनिया में कौओं की सौ से अधिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

कौआ घोंसला पेड़ों पर बनाता है और अप्रैल से जून के मध्य अंडे देता है। पौराणिक कथाओं में तो कौए को अमरता प्रदान की गई है, मगर पक्षी वैज्ञानिकों के अनुसार कौए की औसत उम्र 69 वर्ष होती है। इसकी लंबी चोंच, पंख एवं पैर होते हैं। इनकी सहायता से कौए को भोजन, उड़ान एवं पकड़ में सहयोग मिलता है।

कौए का आकार सामान्यत: 32 से 42 सेंटीमीटर होता है, मगर देशी कौए छोटे होते हैं और जंगली कौए का आकार बड़ा देखा गया है। सामूहिकता, एकजुटता और सतर्कता में कौए को अन्य पक्षियों से आगे पाया जाता है। चालाक और स्वच्छतापसंद कौओं को प्राय: धूर्तता के लिए जाना जाता है, मगर ये चतुर और चपल भी होते हैं। यह बात अलग है कि कोयल इनकी चालाकी को धता बताते हुए अपने अंडों की रक्षा कौओं से करवाने में सफल रहती है। कौए को स्वच्छतापसंद भी कहा जाता है।

शहरों में बढ़ती अस्वच्छता के लिए कौओं की घटती संख्या को भी जिम्मेदार समझा जाता है। कौए जहाँ होते हैं, वहाँ ये गंदगी को समाप्त करने में सहायक बन जाते हैं। कीड़े-टिड्डियों को ये चट कर जाते हैं। खेतों की जुताई करते समय अक्सर कौए चौकस रहते हैं। इनकी निगाह उन कीड़ों पर रहती है, जो जुताई के समय जमीन से बाहर निकलते हैं। प्राय: यही कौए खड़ी फसल के लिए नुकसानदायक होते हैं और खेतों में खड़ी फसल के बीच पक्षियों को मानव का भ्रम कराने के लिए जो आकृति खड़ी की जाती है, उसे स्थानीय भाषा में 'काग भगौड़ा' भी कहा जाता है।

अन्य पक्षियों के अंडों एवं छोटे चूजों के लिए कौए हानिकारक होते हैं, मगर अपनी कौम के लिए काफी सक्रिय होते हैं। जब कोई कौआ संकट में होता है तो यह काँव-काँव की आवाज निकालकर सभी को इकट्ठा कर लेता है। यह शोर काफी कर्कश होता है।

कौए को अक्सर एक आँख से देखते हुए पाते हैं, जबकि वह ऐसा करते हुए अपनी बुद्धिमानी को दरसाता है। उसकी बुद्धिमानी के किस्से तो भारतीय पौराणिक कथाओं में खूब मिलते हैं। रामायण में काकभुशुंडी की जो भूमिका है, वह किसी समझदार और विद्वान पात्र से कम नहीं है। यहाँ तक कि यह पात्र रक्षा में भी आगे बताया गया है। महाभारत और पंचतंत्र की कथा में भी कौआ उपस्थित है।

श्राद्ध पक्ष में कौओं को बाकायदा आमंत्रित किया जाता है और उन्हें खीर-पूड़ी खिलाई जाती है। ऐसा समझा जाता है कि कौए के माध्यम से ही पितरों को भोजन पहुँचता है। घर की मुँडेर पर कौए का बैठना यह संकेत देता है कि यह किसी के आगमन की सूचना है। इसे भय और अनिष्ट के रूप में मानते हुए गलत जानकारी देकर बला टालने की कोशिश की जाती है।

वहीं आगंतुक की राह भी देखी जाती है। प्राचीन कथाओं से लेकर आधुनिक कथाओं, फिल्मों में भी कौए को लेकर संवाद या गीत प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। कौए की उपस्थिति हमारे समाज में सदा से रही है। यह भी गौर करने लायक है कि कौए जैसा स्थान भारतीय समाज में किसी अन्य पक्षी को नहीं मिल पाया है।

कौआ दिखने में काला होता है, इसकी आवाज कर्कश होती है, फिर भी इसका जिक्र हमेशा होता है। कौए की तेज नजरों के तो जासूस भी कायल होते हैं। कौए के देखने की शैली अजीब होती है मगर वह सतर्क होता है। जमीन पर पड़ी खाद्य सामग्री हो या कीड़े, वह तुरंत देख लेता है और चतुराई से उसे उठा लेता है। आश्चर्य इस बात का है कि समाज में इस कदर रच, बस गए इस पक्षी की संख्या निरंतर घटती जा रही है। श्राद्ध पक्ष में अब कौओं को खोजना पड़ता है।

पहले स्थिति यह थी कि आवाज लगाते ही कौओं का झुंड आ जाया करता था, अब श्राद्ध पक्ष में तो ठीक सामान्य दिनों में भी कौए नहीं दिखते हैं।

कौओं की घटती संख्या प्राकृतिक असंतुलन को तो दरसाती ही है, मानवीय असंवेदनशीलता को भी स्पष्ट करती है। कौआ मनुष्य को कभी हानिकारक नहीं रहा है, मगर मनुष्य की विकासशील सोच के आगे कौआ हार रहा है।

जरूरत इस बात की है कि कौए जैसे कम होते जा रहे प्राणियों की रक्षा की जाए और मानव को संवेदनशील बनाया जाए। यदि ऐसा होता है तो कौओं की काँव-काँव सुनाई देती रहेगी। ❑

एक गाँव में विभिन्न देवी-देवताओं को मानने वाले लोग रहा करते थे। वे सभी अपने देवता को दूसरे के देवता से श्रेष्ठ सिद्ध करने के आयोजन में लगे रहते। इस वाद-विवाद में किसी का भला न हो पाता, बल्कि ग्राम्य-विकास का कार्य भी रुका रहता था। एक दिन उस गाँव में एक संत का आगमन हुआ।

उन्होंने जब गाँववासियों को आपस में इन मुद्दों पर बहस करते देखा तो वे उन्हें समझाते हुए बोले—"बेटा! जीवन ही प्रत्यक्ष देवता है। जो उसकी आराधना करते हैं, वे ही महान उपलब्धियों के अधिकारी बनते हैं। जीवन के रूप में मिले अवसर का दुरुपयोग करने वाले अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं व दुर्गति का दुःख भोगते हैं। उनका उद्धार कोई नहीं कर पाता है।"

मन को मनाना सीखें

मन सदा चंचल होता है। वृत्तियों के अनुरूप मन कार्य करता है। वृत्तियाँ जैसी होती हैं, मन भी वैसा ही होता है। वृत्तियाँ अधोगामी होती हैं तो मन का स्वभाव भी ऐसा ही बन जाता है। इसलिए प्राय: लोगों की यह शिकायत होती है कि हमारा मन बुराई से हटता नहीं। इच्छा तो बहुत करते हैं, धर्मानुष्ठान भी चलाते हैं, तप और उपासना भी करते हैं, किंतु मन विषयों से हटता नहीं। बुराइयाँ हर क्षण मस्तिष्क में छाई रहती हैं। जब ऐसी बातें सुनने को मिलती हैं तो लगता है मन ही सब कुछ है, वही जीवन की संपूर्ण गतिविधियों का संचालन करता है।

यह बात अगर मान भी लें तो यह नहीं कह सकते कि मन स्वभावत: अधोमुखी है, क्योंकि संत-हृदय पुरुषों के मन की भी गति होती है। उनकी प्रवृत्तियाँ, रुचि और क्रिया-व्यापार जब सदाचारमूलक होते हैं तो यह कैसे कह सकते हैं कि मन स्वत: बुराइयों की ओर चला जाता है। वस्तुत: हमारी रुचि जिन विषयों में होती है, हम उन्हीं का चिंतन करते हैं और उन्हीं में तृप्ति अनुभव करते हैं।

मन को जब किसी विषय में रुचि नहीं होती, तभी वह अन्यत्र भागता है। विषयों की ओर भटकता हुआ मन ही दु:ख का कारण होता है। इस अवस्था से हम तब तक छुटकारा नहीं पा सकते, जब तक मन की लगाम नहीं खींचते और उसे कल्याणकारी विषयों में नहीं लगाते। मन तो हमारी इच्छानुसार रुचि लेता है। जिन व्यक्तियों की तरह-तरह की स्वादिष्ट वस्तुएँ खाते रहने में रुचि होती रहती है, वे इसी में भटकते रहते हैं।

स्वादिष्ट चीजें बार-बार खाते रहते हैं, पर किसी से तृप्ति ही नहीं होती। एक के बाद दूसरे पदार्थ में उन्हें अधिक स्वाद प्रतीत होता है। इस स्वाद में उन्हें न तो अपने स्वास्थ्य का ध्यान रहता है, न भविष्य का। उनकी पाचन-प्रणाली बिगड़ जाती है, स्वास्थ्य खराब हो जाता है तो कहते हैं हम क्या करें, हमारा तो मन नहीं मानता।

वहीं किसी दूसरे व्यक्ति को स्वस्थ रहना अधिक पसंद होता है। उसे बल-प्रदर्शन की इच्छा होती है तो वह कसरत करता है, कुश्ती लड़ता है, मालिश और पौष्टिक पदार्थों के लिए समय, श्रम और धन जुटाता है। अनेकों क्रियाएँ केवल इसीलिए करता है कि उसे स्वास्थ्य अधिक प्रिय है। मनुष्य की जैसी रुचि हो, मन वैसा ही करता है। अत: इसे शत्रु नहीं, मित्र समझना चाहिए। उसे किसी उत्तम और उपयोगी विषय पर टिकाए रहना सुगम है।

जिस विषय में हम अपनी उन्नति या श्रेय समझते हैं, उसमें अपने मन को प्रवृत्त करना चाहिए। मन हमें बताएगा कि हम उसकी सफलता के लिए क्या करें? हमारा मन सदा कल्याणकारी विषयों में लगा रहे, इसका ध्यान रखना चाहिए।

'हमारे लिए कुछ न होगा' ऐसा निराशापूर्ण दृष्टिकोण ही मनुष्य की असफलता का कारण है। जब हम यह मान लेते हैं कि इस कार्य को हम करके ही छोड़ेंगे तो वह कार्य जरूर सफल होता है। आशा और आत्मविश्वास में बड़ी उत्पादक शक्ति है। जब हम उन्हें जीवन में धारण करते हैं तो हमारा मन शांत और स्थिर होता है।

हम जिस विषय में ध्यान देंगे, उसके अच्छे-बुरे पहलुओं का एक सर्वांगपूर्ण रेखाचित्र अपने मस्तिष्क में बनाए रखना चाहिए। जिधर कमी या

अनुपयुक्तता दिखाई दे, उधर मन की दीवार खड़ी कर अपनी रुचि की दिशा को सन्मार्ग की ओर मोड़ते रहना चाहिए। निरंतर अभ्यास से जब वह स्थिति बन जाती है, तब मन स्वयं कोई विकल्प उत्पन्न नहीं करता।

सत्संकल्पों में ही अवस्थित बनने के लिए गीताकार ने भी यही प्रयोग बताया है। लिखा है—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

हे अर्जुन! निश्चय ही यह मन चंचल और अस्थिर है। इसको वश में करना निश्चय ही कठिन है, किंतु अभ्यास और वैराग्य की भावना से वह भी वशवर्ती हो जाता है। अभ्यास का अर्थ—हम जिस विषय में रुचि रखते हैं, बार-बार अपने मन को उसी में लगाना चाहिए।

यदि हमें विद्याध्ययन करना है तो हमारा ध्यान इस प्रकार रहे कि कहाँ-से पुस्तकें प्राप्त करें? कौन-सी पुस्तक अधिक उपयुक्त है? अच्छे नंबर प्राप्त करने के लिए परिश्रम भी वैसा ही करना है। इससे हमारे विचारों की आत्मनिर्भरता, सूझ और अनुभव बढ़ेंगे और उसी में लगे रहने से हमें सफलता भी मिलेगी।

अपनी हीन प्रवृत्ति के कारण ही मनुष्य प्राय: अशुभ विचारों और अप्रिय अवस्थाओं का चिंतन करते रहते हैं। इसी कारण उनके मस्तिष्क में निरंतर द्वंद्व छिड़ा रहता है। कामुकतापूर्ण विचारों वाला व्यक्ति सदैव वैसे ही विचारों से घिरा रहता है।

यदि कभी थोड़े-से विचार आत्मकल्याण के जाग्रत होने भी लगते हैं तो अनिश्चयात्मक बुद्धि के कारण तरह-तरह के संशय उठते रहते हैं। जब तक एक तरह के विचार परिपक्व नहीं होते, तब तक उस दिशा में अपेक्षित प्रयास भी नहीं बन पाते।

यही कारण है कि किसी क्षेत्र में व्यक्ति प्रगति नहीं कर पाता। सद्विचार जब जाग्रत होते हैं तो मनुष्य का जीवन स्वस्थ, सुंदर और संतोषी बनता है। अपना संकल्प जितना बलवान बनेगा, उतना ही मन की चंचलता दूर रहेगी। इससे वह शक्ति जो मनुष्य को उत्कृष्ट बनाती है, विशृंखलित न होगी और मनुष्य दृढ़तापूर्वक अपने निश्चय पथ पर बढ़ता चलेगा।

जिन कार्यों में हमें संतोष नहीं होता हो, उन्हें अपने जीवन का अंग नहीं बनाना चाहिए। अपने कार्यों में मानवोचित स्वतंत्रता की भावना का समावेश हो, तभी उनमें अपनी आत्मा व्यक्त होती है। दूसरों के लिए सही मार्गदर्शन वही दे सकता है, जिसमें स्वतंत्र रूप से विचार करने की शक्ति हो।

इस शक्ति का उद्भव मनुष्य के नैतिक साहस और उसके प्रबुद्ध मनोबल से ही होता है। बलवान मन जब किसी शुभ कर्म में संलग्न होता है, तब वह मनुष्य के जीवन को सुख-संपदाओं से ओत-प्रोत कर देता है। उसकी भावनाएँ संकीर्णताओं के बंधन तोड़कर अनंत तक अपने संबंधों का विस्तार करती हैं। वह लघु न रहकर महान बन जाता है।

साथ ही अपनी इस महानता का लाभ दूसरे अनेकों को दे पाने का यश-लाभ प्राप्त करता है। इसलिए जीवन के साधनों का प्रमुख कर्त्तव्य यही होना चाहिए कि हमारी मानसिक चेष्टाएँ पतनोन्मुख न हों। मन जितना उदात्त बनेगा, जीवन उतना ही विशाल बनेगा। दु:ख तो मनुष्य अपनी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों के कारण पाता है। अत: अपने आप को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। नियंत्रित मन ही मनुष्य का सहायक है और उससे बढ़कर अपना उद्धारकर्त्ता संसार में शायद ही कोई हो।

इस परम हितैषी मन पर अनुकूल न होने का दोषारोपण करना उचित नहीं लगता। जिस मन पर ही मनुष्य की उन्नति या अवनति आधारित है, उसे सुसंस्कारित बनाने का प्रयत्न सावधानी से करते रहना चाहिए। मन को नियंत्रित करना चाहिए तथा इसके लिए मन को मनाना सीखना चाहिए। ❑

जीवन-विद्या का आलोक केंद्र

वर्ष 2002 में स्थापित देव संस्कृति विश्वविद्यालय पूज्य गुरुदेव के शैक्षणिक विजन पर आधारित एक उच्चतर शिक्षा केंद्र है। यह उत्तराखंड राज्य का पहला निजी विश्वविद्यालय भी है, जिसका एक्ट तत्कालीन उत्तरांचल सरकार द्वारा 11 अप्रैल, 2002 को एकमत से पारित किया था।

यह कुलपिता पूज्य गुरुदेव के सपनों का विश्वविद्यालय है। उनका मानना था कि **ऐसा एक विश्वविद्यालय देश में होना ही चाहिए, जो बड़े मनुष्य, महान मनुष्य, सर्वांगपूर्ण मनुष्य बनाने की आवश्यकता पूर्ण कर सके।** देव संस्कृति विश्वविद्यालय इसी परिकल्पना का साकार रूप है, जिस कारण आश्चर्य नहीं कि इसे **जीवन-विद्या का आलोक केंद्र** भी कहा जाता है।

सर्वविदित है कि पूज्य गुरुदेव गायत्री के सिद्ध साधक, 3400 से अधिक पुस्तकों के लेखक, आर्ष वाङ्मय के भाष्यकार, वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रणेता, विचारक्रांति-अभियान के माध्यम से युग निर्माण आंदोलन के सूत्रधार, नैष्ठिक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, प्रखर पत्रकार, आध्यात्मिक पत्रकारिता के पुरोधा, अखिल विश्व गायत्री परिवार के संगठक-संस्थापक और भारतीय संस्कृति के माता-पिता गायत्री एवं यज्ञ के तत्त्वदर्शन के आधार पर नवयुग के भविष्यद्रष्टा थे, जिन्होंने **'21वीं सदी-उज्ज्वल भविष्य'** का नारा दिया।

पूज्य गुरुदेव का कार्य दुर्गम हिमालयवासी दादागुरु द्वारा प्रेरित रहा, जिनकी आयु 800 वर्षों से अधिक मानी जाती है। किशोर श्रीराम को पूजा-कोठरी में 15 वर्ष की आयु में दादागुरु का साक्षात्कार हुआ और उन्होंने उनके पूर्वजन्म की झलक दिखाते हुए इस जीवन के दैवी प्रयोजन का मार्गदर्शन किया और इस निमित्त तीन बार सशरीर हिमालय यात्रा तथा एक बार सूक्ष्मशरीर से यात्रा का निर्देश दिया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय का उद्देश्य आधुनिक शिक्षा-प्रणाली को आध्यात्मिक मार्गदर्शन के साथ समन्वित करना है, ताकि ऐसे संतुलित, कुशल एवं आत्मिक रूप से उन्नत स्नातकों का निर्माण किया जा सके, जो आध्यात्मिक परिवर्तन की वैज्ञानिक समझ रखते हों तथा समाज में सकारात्मक योगदान देने के लिए प्रेरित हों।

इसी उद्देश्य को सारगर्भित रूप में व्यक्त करता हुआ विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है—**'वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरण हेतु एक विश्वविद्यालय'**। इस अनुरूप देव संस्कृति विश्वविद्यालय का मिशन है—

- पारंपरिक शिक्षा का विज्ञान एवं आध्यात्मिकता के साथ समन्वय।
- समर्पित, सद्गुणी एवं ज्ञानसंपन्न विद्यार्थियों का निर्माण।
- वैज्ञानिक अध्यात्म के सिद्धांतों का जीवन में समावेश।
- राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण जागरूक नागरिकों का विकास।
- मानवीय मूल्यों एवं वैश्विक-बंधुत्व भावना से युक्त नेतृत्व का निर्माण।

साररूप में, शिक्षा और विद्या का समन्वय आचार्यश्री के शिक्षा दर्शन का आदर्श रहा है। शिक्षा का उद्देश्य विषय के ज्ञान एवं कौशल-

विकास से है, जिससे स्नातकों का रोजगार सुनिश्चित हो सके। इसके लिए विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में सैद्धांतिक और प्रयोगात्मक, दोनों का आदर्श समन्वय किया गया है। इसके साथ कौशल-आधारित पाठ्यक्रम से लेकर सामाजिक परिवीक्षा व स्वावलंबन-प्रशिक्षण की व्यवस्था विश्वविद्यालय में की गई है।

विद्या के अंतर्गत व्यक्तित्व परिष्कार, चरित्र निर्माण एवं संस्कारयुक्त जीवन के प्रयास आते हैं। जिसके निमित्त विश्वविद्यालय में जीवन प्रबंधन की कक्षाएँ नियमित रूप से हर सत्र में चलती हैं। इसके अंतर्गत जीवनशैली प्रबंधन, तनाव प्रबंधन, संचार कौशल, स्व-नेतृत्व, सृजनात्मक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण, आध्यात्मिक उत्कर्ष जैसे जीवन कौशल प्रधान विषयों को पढ़ाया व सिखाया जाता है। इसे मानवीय सद्गुणों के विकास के साथ जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण कह सकते हैं, जिसमें आचारवान आचार्यों की सक्रिय भूमिका रहती है।

विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रतिकुलपति से लेकर वरिष्ठ एवं कनिष्ठ अध्यापकों का इसमें सम्मिलित योगदान रहा है। जीवन में व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक अध्यात्म की समझ एवं समावेश के लिए स्वयं विश्वविद्यालय के कुलाधिपति साप्ताहिक गीता एवं ध्यान की कक्षाएँ लेते हैं और नवरात्र की विशेष कक्षाएँ इसमें सर्वथा नया आयाम जोड़ती हैं, जिनमें रामचरितमानस से लेकर दुर्गा सप्तशती व उपनिषद्, दर्शन आदि का पारायण किया जाता है।

इस तरह देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शिक्षा के साथ विद्या के समन्वित प्रयास व्यक्तित्व के नैतिक विकास, चरित्र गठन एवं सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करते हैं। विश्वविद्यालय में पुरातनता एवं आधुनिकता का अद्भुत संगम देखा जा सकता है। एक ओर जहाँ इसके अधिकांश पाठ्यक्रम भारतीय ज्ञान-परंपरा पर आधारित हैं, वहीं इसके अन्य मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान आधारित पाठ्यक्रम इंटरडिसिप्लनरी विषयों के रूप में आध्यात्मिकता एवं भारतीय ज्ञान परंपरा का समावेश करते हैं।

वहीं इसके विज्ञान एवं तकनीकी से जुड़े पाठ्यक्रम कंप्यूटर विज्ञान, साइबर सुरक्षा, एनीमेशन, डिजिटल माध्यम, डिजिटल साक्षरता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे पाठ्यक्रमों को रूबरू कराते हैं।

इस तरह यहाँ के पाठ्यक्रमों में आध्यात्मिकता एवं वैज्ञानिकता का संगम देखा जा सकता है। विश्वविद्यालय का आवासीय परिसर एवं इसका दिव्य वातावरण तथा अनुशासित जीवन सही माने में विश्वविद्यालय को आधुनिक गुरुकुल का रूप देते हैं। जिसमें दिन की नियमित कक्षाओं के साथ प्रातः आत्मबोध साधना से लेकर सामूहिक प्रार्थना, ध्यान, योग, यज्ञ, स्वाध्याय, सायंकालीन नादयोग ध्यान, रात्रिकालीन प्रार्थना और तत्त्वबोध-साधना जीवनचर्या के अभिन्न अंग रहते हैं।

इसके साथ यहाँ का दिव्य वातावरण सहज रूप में शांति, सात्त्विकता एवं सृजनात्मक प्रेरणा से आप्लावित रहता है। राह व दीवारों पर लिखे सद्वाक्यों, भवनों के संस्कृतिनिष्ठ नामों के साथ यहाँ परिसर के भवन, दीवारें और हवा भी जैसे जीवन-विद्या का पाठ पढ़ाते प्रतीत होते हैं।

परिसर के केंद्र में प्रज्ञेश्वर महाकाल मंदिर इस दिव्य परिसर की धुरी है और इसके सामने है परमचक्र विजेता शूरवीरों की शौर्य गाथाओं से युक्त शौर्य-दीवार। परिसर में भारतमाता की प्रतिमा से सजा मातृमंडपम्, राष्ट्रगान के साथ दिन की कक्षाओं का शुभारंभ और आसमान छूता तिरंगा राष्ट्रभक्ति के भाव के साथ विद्यार्थियों को ओत-प्रोत करता है। इस तरह विश्वविद्यालय की यह धुरी सतत भक्ति, शक्ति, राष्ट्रप्रेम एवं पराक्रम का संदेश देती रहती है।

ज्ञानदीक्षा संस्कार विश्वविद्यालय की अन्य विशेषता है, जहाँ वेदमंत्रों के साथ कुलाधिपति महोदय एवं गणमान्य आध्यात्मिक विभूतियों द्वारा नवप्रवेशी छात्र-छात्राओं को संकल्पित एवं दीक्षित किया जाता है। इस पुनीत परंपरा का अनुसरण करने वाला देव संस्कृति विश्वविद्यालय देश का प्रथम विश्वविद्यालय रहा है, जिसका आज दर्जनों विश्वविद्यालय अनुसरण कर रहे हैं। दीक्षारंभ के साथ अब तक छह दीक्षांत समारोह हो चुके हैं, जिसमें लगभग सभी तत्कालीन राष्ट्राध्यक्षों का आगमन व प्रेरक उद्‌बोधन हो चुका है। इसमें नोबेल पुरस्कार विजेता विभूति भी शामिल रहे हैं।

पढ़ाई पूरी करने के बाद 1 से 3 माह की सामाजिक इंटर्नशिप विश्वविद्यालय की एक अन्य विशेषता है, जिसमें विद्यार्थी विद्यार्जन के दौरान सीखे अपने ज्ञान व अनुभव को समाज में जाकर साझा करते हैं, जिसके अंतर्गत वे स्कूल-कॉलेज, विश्वविद्यालयों, सामाजिक संगठनों, पुलिस, जेल, सेना जैसे सरकारी संस्थानों तथा आम जनता के बीच जाकर अपना ज्ञान बाँटते हैं।

यह प्रयोग स्वयं विद्यार्थियों के लिए एक रूपांतरकारी अनुभव रहता है। साथ ही **'डिग्री है पाना तो 5 पेड़ है लगाना'** का संकल्प हर विद्यार्थी की पर्यावरण-संरक्षण में प्रतिभागिता को सुनिश्चित करता है। इसी के साथ ऋषि संस्कृति की सम्यक विकास की गरिमामयी परंपरा के अनुरूप प्रकृति, संस्कृति, ग्राम्य जीवन एवं समावेशी विकास को लेकर विशिष्ट प्रयास चल रहे हैं।

यहाँ का हरा-भरा, स्वच्छ एवं पावन परिसर प्रवेश करते ही नवागंतुक का ध्यान आकर्षित करता है। पूरी तरह से यहाँ परिसर के कचरे को निष्पादित कर ऑर्गेनिक खाद का रूप दिया जाता है, जिसका उपयोग परिसर के खेत, बगीचों व गमलों में होता है। 'जीरो कार्बन फुटप्रिंट' के साथ विश्वविद्यालय-परिसर प्राकृतिक जीवन की एक प्रेरक मिसाल है। देसी नस्ल की गोशाला परिसर की शोभा बढ़ाती है।

यहाँ के ग्रामीण प्रबंधन विभाग द्वारा संचालित आदर्श ग्राम्ययोजना—स्वावलंबी, शिक्षित, संस्कारवान, व्यसन एवं नशामुक्त भारत के निर्माण की दिशा में सतत क्रियाशील है। इस तरह अपने स्थापनाकाल वर्ष—2002 से विश्वविद्यालय मूल्य आधारित, विविधतायुक्त, कौशल आधारित, गुणवत्तापरक शिक्षा एवं विद्या के समन्वय एवं संप्रेषण का कार्य कर रहा है।

अत: जब एनईपी—2020 का आगाज होता है, तो विश्वविद्यालय को इसको अपनाने में कोई कठिनाई नहीं होती; क्योंकि देव संस्कृति विश्वविद्यालय पूर्व में ही इस दिशा में कार्य कर रहा था। 2023 में स्नातक स्तर पर एनईपी—2020 का क्रियान्वयन हो चुका है और परास्नातक पाठ्यक्रमों में अगले सत्र से लागू होने वाला है। समग्र रूप में एनईपी के दिशा निर्देशों को अपनाने वाला देव संस्कृति विश्वविद्यालय, देश के चुनिंदा विश्वविद्यालयों में से एक है।

विश्वविद्यालय में सामूहिक साधना, संस्कार एवं सांस्कृतिक उल्लास का वातावरण भी उल्लेखनीय है। यहाँ जन्मदिवस संस्कार से लेकर विभिन्न राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पर्व-त्योहार उत्साह, उल्लास एवं भव्यता के साथ आयोजित किए जाते हैं। इसके साथ विश्वविद्यालय के हर स्कूल की पारी के साथ सामूहिक यज्ञ, श्रमदान एवं दीपयज्ञ में भागीदारी रहती है।

इनके साथ सामूहिक जप, ध्यान, साधना, अनुष्ठान के उपक्रम वातावरण के दिव्य प्रवाह को पुष्ट करते रहते हैं। संस्कृति का यह संचार परिसर या देश तक सीमित नहीं है, यहाँ पठन करने वाले व पधारने वाले विदेशी मेहमान एवं विद्यार्थी भी भारतीय संस्कृति में रँगकर इसके मूल भाव को ग्रहण करते हैं।

इसके साथ लगभग सभी महाद्वीपों में 30 से अधिक देशों में, 100 से अधिक शैक्षणिक अनुबंध विश्वविद्यालय के वैश्विक उद्देश्य को पूर्ण करने की दिशा में मील के पत्थर माने जा सकते हैं। विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के शैक्षणिक आदान-प्रदान के साथ यह प्रक्रिया और सक्रिय रूप ले रही है।

परिसर में एशिया का पहला सेंटर फॉर बाल्टिक कल्चर एंड स्टडीज स्थापित है, जिसमें भारत और इन देशों के मध्य भाषागत एवं सांस्कृतिक साम्यता के बिंदुओं पर शोध चल रहे हैं। साथ ही दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान भी है। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं प्रतिकुलपति महोदय की देव संस्कृति के दूत के रूप में विभिन्न वैश्विक मंचों पर सक्रिय प्रतिभागिता के साथ भारतीय देव संस्कृति का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार एवं विस्तार सुनिश्चित हो रहा है।

विश्वविद्यालय का अपने शैक्षणिक उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए आधारभूत संरचना का पुख्ता इंतजाम है, जिसके अंतर्गत शैक्षणिक एवं प्रशासनिक भवन, प्रयोगशालाएँ, सभागार, समृद्ध पुस्तकालय, छात्रावास, चिकित्सा सुविधाएँ, पॉलिक्लीनिक आदि शामिल हैं।

विश्वविद्यालय परिसर में ही प्री-स्कूल से लेकर बारहवीं तक छात्र-छात्राओं के लिए विद्यापीठ संचालित है। भारत के राष्ट्राध्यक्ष एवं गणमान्य व्यक्ति यथा—डॉ. अब्दुल कलाम आजाद, श्री प्रणव मुखर्जी, श्री नरेंद्र मोदी जी, गृहमंत्री श्री अमित शाह, श्री शिवराज सिंह चौहान, श्री पुष्कर सिंह धामी, श्री कैलाश सत्यार्थी जैसे मूर्द्धन्य राष्ट्राध्यक्ष, समाजसेवी एवं आध्यात्मिक विभूतियाँ यहाँ पधार चुकी हैं और देव संस्कृति विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रयोगों, दूरदर्शी नेतृत्व, युवाओं की ऊर्जा का सही दिशाबोध, आध्यात्मिक उत्थान एवं नियोजन, अध्यात्म के साथ राष्ट्र उत्थान, विश्व कल्याण, संस्कृति एवं संस्कारयुक्त शिक्षा, महामानव गढ़ने की टकसाल, मूल्यों एवं संस्कृति के वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण जैसी विशेषताओं की भूरि-भूरि प्रशंसा कर चुके हैं।

विदेश से यहाँ पधारी विभूतियाँ भी इसकी अपवाद नहीं हैं, जिन्हें देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारत के विश्वबंधुत्व दर्शन की जीवंत-जाग्रत मिसाल दिखती है।

सारतः देव संस्कृति विश्वविद्यालय का पूर्णता आवासीय परिसर, यहाँ का दिव्य वातावरण, आचार्यों का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन एवं सान्निध्य, कुलाधिपति जी की विशिष्ट गीता-ध्यान एवं नवरात्र कक्षाएँ, पुरातन विधाओं के साथ वैज्ञानिकता एवं आधुनिकता का संगम,

नास्ति गंगासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
गायत्र्यास्तु परं जप्यं न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव के समान कोई देवता नहीं, गायत्री से श्रेष्ठ कोई जप नहीं।

अनुशासित विद्यार्थी जीवन एवं जीवनशैली, व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं चरित्र गठन को रूपाकार देती शिक्षा के साथ संस्कार और जीवन-विद्या के प्रशिक्षण जैसे प्रयोग-देव संस्कृति विश्वविद्यालय को आधुनिक गुरुकुल के एक अभिनव संस्करण के रूप में प्रस्तुत करते हैं और वैश्विक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरण के ध्येयवाक्य के अनुरूप शिक्षा एवं संस्कार, राष्ट्र चेतना एवं विश्व संवेदना के जागरण विस्तार के प्रयासों के साथ शिक्षा के माध्यम से नई पीढ़ी को गढ़ने व व्यापक परिवर्तन की पृष्ठ भूमि तैयार करने की दिशा में सतत प्रयत्नशील है। ❑

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प-3

मनोनिरोध के सूत्र

हमारे युग निर्माण सत्संकल्प का तीसरा सूत्र मानव मन को सही दिशा, गति एवं सार्थकता प्रदान करने की प्रेरणा लेकर प्रस्तुत है। मन को समझना, नियंत्रित करना और सार्थक दिशा में लगाए रखने वाली प्रक्रियाओं को आत्मसात् कराना ही इस तीसरे सूत्र का प्रयोजन है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इस सूत्र के माध्यम से मानव मात्र के जीवन की सही दिशा और उचित रीति-नीति को निर्धारित करने वाली दिव्य प्रेरणाएँ प्रकट की हैं। मन जीवन का सारथी है। वह जिधर जाता है, जीवन उसी दिशा में निकल पड़ता है। हमारा मन ही समस्त कर्मों-क्रियाकलापों का आधार है। व्यष्टि और समष्टि जीवन के सभी उद्देश्यों की प्राप्ति में मन की ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अतः मन को अनुकूलता में लाना युग निर्माण का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

सत्संकल्प का पहला सूत्र जीवन में श्रेष्ठ आदर्शों, मूल्यों की प्रतिष्ठापना करना है, दूसरा एक भव्य एवं दिव्य जीवन की सुदृढ़ आधारभूमि तैयार करना है और यह तीसरा सूत्र उस आधारभूमि पर जीवन-निर्माण की सही दिशा और गति का निर्धारण करने की प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त करता है।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में इस महामंत्ररूपी तीसरे सूत्र की अभिव्यक्ति है—**''मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।'** विचार, भाव, इच्छा, कल्पना, संकल्प-विकल्प—इन सभी का आश्रयस्थल मन ही है।

इन सब वृत्तियों-भावों का संयुक्त स्वरूप ही मन है। आध्यात्मिक दृष्टि से मन और उसके इन आयामों-प्रवृत्तियों में ही हमारा सूक्ष्मशरीर समाहित है। हमारी गुरुसत्ता ने इसी सूक्ष्मशरीर के संरक्षण, पोषण और संवर्द्धन के मर्म को समाहित कर दैनिक जीवन में अपनाए जा सकने वाले उपायों—निर्देशों को सत्संकल्प के तीसरे सोपान में रखा है।

ये उपाय अत्यंत सरल, सहज एवं सर्वसुलभ हैं, परंतु इनके परिणाम समूची विश्व मानवता के उत्थान एवं कल्याण को सिद्ध करने वाले हैं। विचार और भावों के दूषित हो जाने पर ही व्यष्टि-समष्टि की समस्त परेशानियाँ उत्पन्न होती हैं। इस युग की सभी समस्याओं का मूल भी कुविचार और दुर्भावनाएँ ही हैं।

इनके परिष्कार में ही युग की समस्याओं का समाधान छिपा हुआ है। परिष्कार कैसे किया जाना है, इसी का उपाय-निर्देशन पूज्यवर ने इस सूत्र में किया है। सत्संकल्प का यह तीसरा सूत्र मानवीय जीवन के मनोआध्यात्मिक पहलू को समझने और विकसित बनाने का सुगम उपाय प्रस्तुत करता है।

जहाँ दूसरा सूत्र आरोग्यता के रूप में जीवन की भौतिक-प्राणिक संरचना को परिष्कृत-संवर्द्धित करने का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं यह तृतीय सूत्र स्वाध्याय और सत्संग के सर्वसुलभ उपायों द्वारा मानसिक और भावनात्मक परिष्कार व संवर्धन की प्रक्रिया से जोड़ता है। पूज्य गुरुदेव के इन दोनों महामंत्ररूपी सूत्रों में मनुष्य जीवन के समग्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के परिष्कार व नवजीवन निर्माण का मर्म समाहित है। दूसरे सूत्र की प्रेरणाओं पर विगत भाग में चर्चा की जा चुकी है। अब यहाँ इस तीसरे सूत्र की व्यावहारिक प्रक्रिया एवं प्रेरणाओं को आत्मसात् किए जाने का चिंतन प्रस्तुत है।

इस सूत्र को आत्मसात् करने का पहला चरण है—मानव मन के स्वरूप, प्रकृति और महत्त्व के प्रति जागरूकता। जिस प्रकार शरीर के प्रति जागरूकता बढ़ने पर उसकी देख-भाल, साज-सँवार, स्वास्थ्य-सौंदर्य, अभिव्यक्ति-कुशलता जैसे सभी आयामों में गुणवत्ता प्रकट होने लगती है, कुछ इसी प्रकार मन के प्रति भी मनुष्यमात्र में जागरूकता आने लगे तो उसमें उत्पन्न प्रवृत्तियाँ जैसे विचार, भाव, कल्पना, इच्छा-आकांक्षा आदि अनेकों आंतरिक क्षमताओं के स्तर पर नियंत्रण, शोधन, संतुलन-सामर्थ्य जैसी विशेषताएँ जीवन को उच्चता की श्रेणी में पहुँचा देती हैं।

इस आधुनिक युग की विडंबना यह है कि मनुष्य भौतिक दृष्टि से बाह्यजगत् को आधार बना कर अथवा भोगवादी कामनाओं के वशीभूत शरीर के स्तर पर जीवन को थोड़ा-बहुत सँभाल लेता है, लेकिन मन और भावनाओं के स्तर पर सिरे से बे-परवाह, लापरवाह, नासमझ और अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ है। यही कारण है, जिससे जीवन दुर्विचार और दुर्भावनाओं से भर उठा है।

शरीर के साथ-साथ अपने मन की भी देख-भाल करना, स्वच्छ-समर्थ बनाए रखना आवश्यक है। स्वयं पूज्य गुरुदेव ने **'स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन व सभ्य समाज'** की संकल्पना में, मन की स्वच्छता को नवयुग के निर्माण की महत्त्वपूर्ण व अनिवार्य आवश्यकता कहा है। मन को स्वच्छ रखने के लिए उसकी प्रवृत्तियों पर अंकुश होना चाहिए।

मन का स्वभाव अत्यंत चलायमान है। वृत्तियों के आवेग में वह सदैव चंचल ही बना रहता है। स्थिर मन तो केवल कोई सिद्ध योगी या अचेत पागल का ही हो सकता है। सामान्य जीवन में तो मन सदैव चंचल ही बना रहता है। मन की इस चंचलता को यदि सार्थक दिशा न दी जाए तो यही जीवन में सारे उपद्रव, अशांति, क्लेश, पीड़ा का कारण बन जाता है। इसी स्वभाव के कारण मन को जीवन का सबसे बड़ा मित्र व सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

—गीता 6/5

जिस प्रकार पानी अपनी नैसर्गिक अवस्था में ढलान की ओर स्वतः चलते जाता है, परंतु यदि ऊँचाई की ओर ले जाना हो तो किसी-न-किसी प्रकार की शक्ति का प्रयोग करना ही पड़ता है, साथ ही एक निश्चित-नियोजित दिशा में ले जाने के लिए तटबंध रूप अनुशासन बनाना ही होता है। जहाँ भी तटबंध टूटा कि वह नीचे की ओर गिरने जाने को सदैव तैयार रहता है।

कुछ ऐसी ही स्थिति मानवीय मन की भी होती है। उसकी वृत्तियाँ यथा—कल्पना, इच्छा, विचार, भाव-आकांक्षा आदि ढलान की ओर स्वतः चली जाती हैं। कुविचार और दुर्भावनाएँ, जिनका उल्लेख पूज्य गुरुदेव ने सत्संकल्प के इस सूत्र में किया है—यह मन की स्वच्छंदता का ही परिणाम है।

इस मन को नियंत्रित व अनुशासित करने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के सत्प्रयासरूपी पुरुषार्थ का बल लगाना ही पड़ता है। इसी सत्प्रयास को स्वाध्याय एवं सत्संग के रूप में इस सूत्र में कहा गया है। ये दोनों योग तप, साधना, भक्ति आदि के अभिन्न अंग हैं। दैनिक जीवन में इनका निरंतरता से अभ्यास मन के साथ-साथ संपूर्ण मानव जीवन का रूपांतरण करने में समर्थ कहा गया है।

स्वाध्याय और सत्संग के माध्यम से पूज्य गुरुदेव ने इस सूत्र में विचार के साथ भावनाओं को संयुक्त कर मन परिष्कृत और उच्च बनाने के सरलतम उपाय बताए हैं, परंतु इनके साथ एक अनिवार्य अनुबंध भी जुड़ा है—वह है नियमितता का। जब तक जीवन है, तब तक मन साथ है और मन है तो उसकी चंचल, अस्थिर वृत्तियाँ भी साथ हैं। इन्हें जरा-सी छूट मिली नहीं कि उपद्रव शुरू हो जाता

है। इसलिए यहाँ जीवनपर्यंत इन उपायों को नियमित अपनाए रखने का निर्देश है।

मन तो सदैव विचार और कल्पनाओं के पंखों से गतिशील रहता है। भीतर उठ-पल रही इच्छाएँ-आकांक्षाएँ-भावनाएँ मन को निरंतर कर्म में प्रवृत्त बनाए रखती हैं। विचार, भाव, कल्पना को समेटे सभी कर्मों का आधार यह मन जिस दिशा में गति करता है, उसी दिशा में हमारे जीवन का प्रवाह भी मुड़ जाता है। यदि दिशा सही है तो जीवन सार्थक-सकारात्मक परिणाम उत्पन्न करता है, परंतु यदि दिशा गलत हो तो जीवन की चाल निरंतर अंधकार, पीड़ा, पतन की ओर ही बढ़ती जाती है।

वस्तुतः मन में निरंतर दैवी-आसुरी शक्तियों का सद्विचार व सद्भावना तथा दुर्विचार व दुर्भावना रूप में देवासुर संग्राम चलता रहता है। तप, साधना, स्वाध्याय और भक्ति से ही दैवी शक्तियों को बल मिलता है और वे दुर्विचार व दुर्भावनाओं रूपी आसुरी प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर पाती हैं। विजय-प्राप्ति पर ही यह मन स्वच्छ, शिवसंकल्प से युक्त सद्बुद्धि-सद्भावना का प्रकाशक बन जीवन को उच्चतम शिखर की ओर ले जाता है।

मनुष्य जीवन के लिए श्रेष्ठतम जीवन का मार्ग यही है, जिसमें कृषि में निराई से अवांछनीय घास-फूँस हटाने की भाँति मन के दोषों का निराकरण किया जाए तथा शुद्ध एवं पवित्र विचारों-भावों को आत्मसात् कर सत्कर्मों की फसल बोई जाए।

यही मानवमात्र के लिए ऋषिविहित देवत्वमय महान जीवन की आधारशिला है। आदिकाल से ही मनुष्य जीवन के सर्वोत्तम विकास और उत्कर्ष में मन की भूमिका एवं महत्त्व को हमारे ऋषि-मुनियों-अध्यात्मवेत्ताओं ने समझ लिया था, इसलिए स्थान-स्थान पर इसके स्वरूप, महत्त्व और परिष्कार की चर्चा की गई है।

वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, पुराण आदि में व्यापकता से मन के आयाम और संयम-नियंत्रण संबंधी उपदेश सर्वत्र दिखाई देते हैं। ऋग्वेद के दसवें मंडल में एक संपूर्ण सूक्त ही 'मन आवर्तन' के नाम से है, जिसमें मन के बाह्यजगत् के प्रसार एवं उसके नियंत्रण की स्तुति है। स्वर्ग, पृथ्वी, दिशाएँ, आकाश, समुद्र, औषधियों आदि विभिन्न स्थानों पर पहुँचे हुए मन को वापस लौटने का संबोधन है।

वैदिक ऋषि की मंत्रणा है कि मन की गति अत्यंत तीव्र और आश्चर्यजनक सामर्थ्य से युक्त है। यह एक के बाद एक, कई विषयों में जाता है—यह बहुत्रा या बहुधा है (ऋग्वेद-10/164/2)। यह जहाँ जाता है, वृत्तियाँ भी पहुँच जाती हैं—

मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः

(ऋग्वेद-6/75/6)

मन के वशीभूत ही वृत्तियाँ और इंद्रियाँ होती हैं, अतः मन को नियंत्रित कर जहाँ लगाया जाए, वहीं वृत्तियों और इंद्रियों को भी लगाए रखने में सफलता मिलती है। मन को जहाँ लगाया जा सके, उसके लिए दो ही मार्ग कहे गए हैं—प्रवृत्ति अर्थात संसार का—पतन का मार्ग तथा दूसरा है निवृत्ति का अर्थात कर्म-बंधन से मुक्त आत्मचेतना का मार्ग, जो जीवन को उत्कर्ष और परमार्थ चेतना के प्रकाश से भर देता है। पतन के मार्ग पर तो मन स्वतः ही लुढ़क जाता है, पर उत्थान के मार्ग पर उसे बलात् लाना होता है।

इसी के निमित्त अनेक उपाय, विधियाँ बताई गई हैं, जिनसे मन को नियंत्रित कर सही मार्ग पर लगाया जा सके। उपनिषदों, योगशास्त्रों, धर्मग्रंथों में मन को शुद्ध, सात्त्विक और सही दिशा में बनाए रखने के अनेकानेक उपदेश एवं उपाय हैं। गीता में तो स्वयं भगवान इस चंचल और बलशाली मन को वश में रखने के लिए अभ्यास और वैराग्यरूपी दो उपाय बताते हैं।

ऐसे ही उच्चस्तरीय उपायों और विधियों को वर्तमान युग की वस्तुस्थिति के अनुसार पूज्य गुरुदेव

ने स्वाध्याय और सत्संग के रूप में प्रस्तुत किया है। स्वाध्याय का तात्पर्य है—स्व अर्थात आत्मतत्त्व का अध्याय। जिन शास्त्रों, साहित्यों में आत्मबोध से संबंधित चिंतन एवं विवेचन है, उन ग्रंथों को पढ़ना। वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि से लेकर आत्मसुधार, आत्मसमीक्षा, आत्मनिर्माण, आत्मविकास जैसे विषयों पर प्रचुरता से उपलब्ध गुरुदेव द्वारा लिखित युगसाहित्य।

ये सभी स्वाध्याय करने से उपयुक्त आत्मपरिष्कार की विधि का सहज निर्देशन करते हैं। सुविधा की दृष्टि से महापुरुषों, मनीषियों, संतों द्वारा लिखित छोटी-छोटी पुस्तकों, सत्साहित्यों का भी नियमित स्वाध्याय के लिए चयन किया जा सकता है।

स्वाध्याय मन को बाह्यजगत् से विमुख कर अंतरात्मा की ओर मोड़ने का सर्वसुलभ एवं एक चमत्कारी उपाय है। थोड़े दिन के अभ्यास से ही मन, बुद्धि और चित्त-चेतना में विवेक और ज्ञान का प्रकाश प्रस्फुटित होने लगता है। सत्संकल्प में मन के परिष्कार का दूसरा उपाय पूज्य गुरुदेव ने सत्संग को बताया है।

सामान्य प्रचलन में सत्संग का तात्पर्य धार्मिक आयोजनों में भागीदारी, भक्ति, भजन, कीर्तन, गीत-संगीत, प्रवचन आदि से लिया जाता है, परंतु यहाँ सत्संग का अर्थ है—तत्त्वदर्शियों, महापुरुषों, संतों, गुरुजनों, योगियों, सत्पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करना। उनके समीप बैठकर जीवन की सार्थकता का ज्ञान और समस्याओं, जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त करना। ऐसे श्रेष्ठ जनों की बातों से उनके जीवन का गहन अनुभव और ज्ञान जुड़ा होता है, जो सहज ही जीवन के गूढ़ रहस्यों एवं कठिन समस्याओं का सरलता से समाधान कर देता है। सत्पुरुषों का ज्ञान एवं अनुभव जीवन का सही मार्गदर्शन करता है।

सत्संग का प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि गुरुजनों के समीप जाने पर हृदय में भक्ति-भावना प्रगाढ़ होती है, प्रेम, दया और करुणा से आपूरित अंत:संवेदना प्रस्फुटित हो उठती है। पूज्य गुरुदेव ने श्रेष्ठ साहित्य का स्वाध्याय और अच्छे लोगों का संग—इन दो उपायों के नियमित अभ्यास का उपदेश सत्संकल्प के इस तीसरे सूत्र में इसलिए किया है, ताकि युग निर्माण के महान लक्ष्य की स्पष्टता और उसकी प्राप्ति के उपायों को, प्रकट रूप में विश्व मानवता के समक्ष प्रस्तुत कर, उसे उस दिशा में चलने को प्रेरित किया जा सके।

यह सर्वविदित है कि हमारी गुरुसत्ता ने वर्तमान युग में दुर्बुद्धि और दुर्भावना से उत्पन्न आसुरी प्रवृत्तियों को ही समस्त प्रकार की समस्याओं की जड़ में पाया है और सद्विचारों एवं सद्भावनाओं की स्थापना एवं प्रचार-प्रसार में इन सभी समस्याओं का समूल समाधान देखा है।

उनकी दृष्टि एवं रीति-नीति में मानवता के उत्कर्ष एवं उज्ज्वल भविष्य की सुनिश्चितता का यही एकमात्र सर्वोत्तम मार्ग है। उनके इस ध्येय की सिद्धि में मानवीय मन की स्वच्छता का अत्यधिक महत्त्व है। मन के शुद्ध-सात्त्विक होने पर ही उसे सद्विचार और सद्भावना का संवाहक बनाया जा सकता है।

मन के परिष्कार के लिए कठिन-से लगने वाले कार्य को, पूज्य गुरुदेव ने नियमित कुछ समय के स्वाध्याय व थोड़े-से सत्संग के छोटे-छोटे सुगम उपायों द्वारा एकदम सरल बनाकर प्रस्तुत किया है। इन्हें सरलता से हर कोई अपनाकर नियमितता में जीवनपर्यंत निर्वाह कर सकता है। सत्संकल्प का यह तीसरा सूत्र मानवमात्र के व्यक्तिगत व सार्वभौमिक उत्कर्ष, उत्थान और उज्ज्वल भविष्य की कुंजी की तरह है। प्रकारांतर से कहा जाए तो विश्व मानवता के भाग्य और भविष्य की चाबी इसी सूत्र में निहित है।

पूज्य गुरुदेव की अवधारणा में देवत्व का, महानता का, मुक्ति का दरवाजा यहीं से खुलता है। इस सूत्र में कहे गए उपाय एवं प्रेरणा को आत्मसात्

कर लेने मात्र से जीवन में समग्र रूपांतरण संभव हो जाता है। योग, अध्यात्म की उच्चस्तरीय साधनाओं जिन्हें कर्म, ज्ञान और भक्तिमार्ग के रूप में जाना जाता है—इन साधनाओं की त्रिवेणी का सुफल इस सूत्र के नियमित अभ्यास से जीवन में प्रकट होने लगता है। नियमितता से मनोबल, संकल्पबल और कर्मठता की वृद्धि होती है।

कर्मठता का तात्पर्य ही है—अपने कर्मों-कर्त्तव्यों पर डटे रहना। बड़ी-से-बड़ी बाधाएँ भी उसे लक्ष्य से विचलित नहीं कर पाती हैं, जिसने कि नियमितता को साध लिया हो। साधक सच्चे कर्मयोगी की भाँति जीवनपर्यंत अपने कर्त्तव्य-पथ पर अडिग बना रहता है।

स्वाध्याय से मन-अंतःकरण में विवेक, बुद्धि और ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है। ज्ञानयोग की सिद्धि सहज उपलब्ध होती है तथा सत्संग से भीतर के कल्मष-कषाय, क्षुद्र अहंकार, दुर्भावनाओं का शमन हो भावशुद्धि, भाव संवेदना की प्राप्ति व ईश्वरीय अनुभूति का अनुदान प्राप्त होता है। कर्म, विचार और भावशुद्धि को ही अध्यात्म भी कहा जाता है। किसी के आध्यात्मिक हो जाने का मार्ग व लक्षण शास्त्रों-सिद्धांतों में यही है।

सत्संकल्प का यह तृतीय सोपान आश्चर्यजनक रूप में व्यष्टि-समष्टि के सर्वकल्याण का सर्वसुलभ मार्ग अपने में समाहित किए हुए है। ❑

महाराज रविशंकर माह में एक बार अपने राज्य के विभिन्न गाँवों में अन्न बाँटने जाया करते थे। एक बार वे अनाज बाँटने पहुँचे तो उन्हें एक गरीब महिला मिली। महाराज ने उसे अनाज देने का प्रयत्न किया तो वह बोली—''महाराज! जब परमात्मा ने इतना बढ़िया शरीर दिया है तो परिश्रम छोड़कर मुफ्त का अन्न कैसे ग्रहण करूँ?'' महाराज को उसकी यह बात बड़ी अच्छी लगी और उन्होंने उस महिला से पूछा—''वो आजीविका कैसे प्राप्त करती है।'' वो महिला बोली—''महाराज! मैं युवावस्था में ही विधवा हो गई थी, अतः परिवार में कोई नहीं है। जंगल से लकड़ी काटती हूँ और उसे बेचकर गुजारा कर लेती हूँ।''

महाराज ने पूछा—''क्या उसके पति ने उसके लिए कोई जायदाद नहीं छोड़ी।'' तो वह बोली—''उनकी तीस बीघा जमीन थी तो उसे बेचकर मैंने एक कुआँ व हौदी बनवा दी। गाँव की महिलाओं को दो-तीन मील पैदल जाकर पानी लाना पड़ता था।'' उस विधवा के उत्सर्ग व त्याग की कथा सुनकर महाराज रविशंकर अत्यंत प्रभावित हुए और बोले—''तुम धन्य हो देवी! धन से न सही, पर मन से तो तुम इतनी धनवान हो कि कोई राजा-महाराजा भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता।''

शैक्षणिक निर्देशन पर शोध

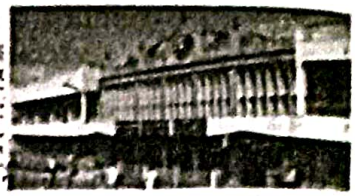

किशोरावस्था जीवन की सर्वाधिक संभावनाओं, सामर्थ्यों और अंत:-बाह्य संघर्षों से संयुक्त अत्यंत संवेदनशील अवस्था है। जीवन की डोर यदि यहाँ पकड़ में आ जाए, साज-सँभाल हो जाए तो भविष्य का जीवन स्वयं ही सफलता और सार्थकता की ओर अग्रसर हो जाता है, परंतु यदि यहाँ कमी रह गई तो भविष्य अंधकार के गर्त में ले डूबता है।

वास्तविक अर्थों में किशोरावस्था ही जीवन और व्यक्तित्व निर्माण की उपयुक्त आधारशिला है। यह बाह्य दृष्टि से अध्ययनकाल की अवस्था के रूप में देखी जाती है, परंतु शिक्षा के साथ-साथ यहाँ पर मनो-भावनात्मक मार्गदर्शन की भी अत्यंत आवश्यकता होती है।

मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में विचार एवं भावनाओं के स्तर पर यह एक तूफान एवं संघर्ष की अवस्था होती है। यहाँ पर उचित और सार्थक मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। मार्गदर्शन न मिल पाने की स्थिति में विद्यार्थी गलत निर्णयों का शिकार हो जाता है और स्वयं को शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और समायोजन आदि अनेक तरह की चुनौतियों के बीच पाता है। इस संदर्भ में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शिक्षा शास्त्र विभाग के अंतर्गत वर्ष—2022 में एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन किशोरावस्था में निर्देशन एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता एवं महत्त्व को तथ्यात्मक एवं प्रामाणिक रीति से स्पष्ट करने का प्रयास करता है। इस शोध अध्ययन को शोधार्थी सुरेंद्र पाल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ0 ममता अरोरा के निर्देशन में पूर्ण किया गया है। इस शोध का विषय है—**'उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में निर्देशन की आवश्यकता—एक अध्ययन।'**

शोधार्थी द्वारा इस शोध अध्ययन से संबंधित प्रयोग हेतु उत्तराखंड राज्य के हरिद्वार जनपद से शासकीय एवं गैर-शासकीय विद्यालयों से यादृच्छिक शोध प्रविधि द्वारा कुल 600 विद्यार्थियों का चयन किया गया। इसमें दस गैर-शासकीय एवं दस शासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों से 11वीं कक्षा के तीस-तीस विद्यार्थियों को प्रयोग हेतु चयनित किया था। इन चयनितों में समान रूप से ग्रामीण एवं शहरी अनुपात तथा बालक एवं बालिका अनुपात को रखा गया था।

शोधार्थी द्वारा चयन की प्रक्रिया पूर्ण होने पर शोध हेतु महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक तथ्यों की प्राप्ति हेतु शोध-उपकरणों को प्रयुक्त किया गया। इन शोध उपकरणों में—

(1) डॉ. जे. एस. गिरेवाल (2019) द्वारा निर्मित गाइडेन्स नीड्स इन्वेन्ट्री,

(2) डॉ. एस. पी. आहलूवालिया एवं डॉ. ए. के. कालिया (2008) द्वारा निर्मित काम्प्रेहेन्सिव मॉडनाईजेशन इन्वेन्ट्री,

(3) सुनील कुमार उपाध्याय एवं अलका सक्सेना (2010) द्वारा निर्मित सामाजिक-आर्थिक स्तर मापनी।

उक्त उपकरणों की सहायता से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि शैक्षणिक उपलब्धि, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर तथा आधुनिकीकरण की दृष्टि से निर्देशन की विद्यार्थियों को अत्यंत आवश्यकता है।

यद्यपि शोध परिणामों में ग्रामीण एवं शहरी, शासकीय एवं गैर-शासकीय तथा महिला एवं पुरुष आदि मानदंडों में तुलनात्मक रूप से सार्थक अंतर पाया गया है, तथापि उच्च निर्देशन व निम्न निर्देशन आदि के परिणामों से यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि न्यूनाधिक रूप में विद्यार्थियों को समुचित मार्गदर्शन एवं निर्देशन की आवश्यकता होती है।

शोध के परिणामों एवं निष्कर्ष के आधार पर शोधार्थी का मत है कि किशोरावस्था के महत्त्व को समझते हुए निर्देशन एवं परामर्श को शिक्षा-प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए। जैसे विद्यार्थी को अपनी व्यावसायिक आकांक्षाओं के अनुरूप क्षेत्र-चयन में कोई असुविधा हो तो वह उपलब्ध मार्गदर्शक से परामर्श प्राप्त कर सकता है। विशेषकर व्यवसाय उन्मुख विषयों के विद्यार्थियों को दिशा-निर्देश की आवश्यकता होती है, ताकि वे उचित व्यावसायिक क्षेत्र का समय से चयन कर सकें।

आधुनिक समय में सामाजिक संरचनाएँ भी तीव्रता से परिवर्तित हो रही हैं और संवेदनात्मक वातावरण का अभाव होता जा रहा है। ऐसे वातावरण में कुंठित हो जाना स्वाभाविक है। ऐसे में निर्देशन की सार्थक और प्रभावी प्रक्रिया द्वारा इन समस्याओं से बचाव किया जा सकता है।

निर्देशन की प्रक्रिया में इस पहलू को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी समाजगत परिवर्तनों को समझ सके और परिवर्तित स्थितियों में सामंजस्य उत्पन्न करने की युक्तियाँ अपना सके।

शैक्षणिक उपलब्धि के स्तर पर भी निर्देशन का अत्यंत महत्त्व और आवश्यकता है। विद्यालयी पाठ्यक्रम की जानकारी को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से संबंधित करने की दक्षता हो तो विद्यार्थी अपनी अनेक समस्याओं का स्वयं समाधान खोज लेने में समर्थ होता है।

इस शोध अध्ययन का निष्कर्ष एवं सुझाव दरसाता है कि विद्यार्थियों को समुचित शैक्षिक, व्यक्तिगत, व्यावसायिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक निर्देशन की व्यवस्था विद्यालयों में होनी चाहिए। अध्यापकों द्वारा पढ़ाई के साथ-साथ समय-समय पर निर्देशन संबंधित समस्याओं व उनके समाधान पर चर्चाएँ की जानी चाहिए।

किशोरवय में भावी जीवन को लेकर अत्यधिक द्वंद्व एवं आतुरता रहती है। ऐसे में विद्यालय में उन्हें सही निर्देशन प्रदान कर इस द्वंद्व की स्थिति से निकलने में सहयोग करना चाहिए। अभिभावकों द्वारा भी प्रोत्साहन, स्वतंत्र निर्णय और कार्यों की सराहना की जानी चाहिए तथा किसी प्रकार भेदभाव न करते हुए विद्यार्थी की रुचि के अनुरूप विषय एवं क्षेत्र के चयन में सहयोग करना चाहिए। ऐसा करने से विद्यार्थी कुंठा जैसी अनेक समस्याओं से बच जाता है।

इसके साथ ही घर-परिवार का माहौल स्वस्थ हो आत्मीयतापूर्ण हो, ताकि बच्चा बिना किसी संकोच के अपनी बातों को रख सके और आवश्यक परामर्श कर सके। शोधार्थी का बहुमूल्य सुझाव है कि विद्यार्थियों की आकांक्षाओं को उच्च से उच्चतर बनाने हेतु निरंतर प्रयास किए जाने चाहिए। परिवार एवं समाज की आदर्श परंपराएँ एवं मूल्यों के प्रति भी उनमें रुचि एवं श्रेष्ठ आदतों का अभ्यास कराया जाना आवश्यक है, ताकि प्रत्येक स्तर पर उनके जीवन में सामंजस्यपूर्ण स्थिति बनी रहे।

स्वयं विद्यार्थियों को भी इस दिशा में प्रयास करना चाहिए और विभिन्न आयोजनों, विद्यालयी प्रतियोगिताओं में उत्साहपूर्वक भागीदारी करना चाहिए। वर्तमान समय में विद्यार्थियों की शिक्षा

संबंधी योग्यताओं पर तो बल दिया जाता है, परंतु अन्य पहलू उपेक्षित रह जाते हैं।

प्राचीन समय में औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से इन सभी पहलुओं पर निर्देशन का कार्य हो जाता था। आधुनिक समय की जटिलता में अब शिक्षा का स्वरूप सर्वथा परिवर्तित हो गया है, परंतु मूल उद्देश्य तो जीवन का समग्र और उत्तम विकास ही है। अत: निर्देशन एवं परामर्श जैसी प्रक्रियाओं को शिक्षा के साथ संबंधित कर बहुत हद तक इस कमी को पूरा किया जा सकता है। जीवन की वास्तविक प्रेरणाएँ—दिशा-निर्देशन व मार्गदर्शन से ही प्राप्त होती हैं। अत: निर्देशन को शिक्षा के उद्देश्य को सार्थक बनाने वाली उपयुक्त प्रक्रिया के रूप में आत्मसात् कर विद्यालयी शिक्षा को समग्रता प्रदान की जा सकती है। शोधार्थी का यह प्रयास इस दिशा में पर्याप्त जानकारी एवं प्रामाणिक तथ्य के आधार पर व्यावहारिक एवं उपयोगी मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। ❑

एक व्यक्ति एक संत के पास पहुँचकर अपनी व्यथा व्यक्त करने लगा। कहने लगा—"महाराज! जीवन तो अल्प काल के लिए मिलता है। बचपन में बोध नहीं होता, वृद्धावस्था बीमारियों में निकल जाती है, युवावस्था में परिवार के भरण-पोषण का दायित्व आ जाता है। आत्मज्ञान मनुष्य प्राप्त करे भी तो कैसे?" उसका उत्तर सुनकर संत रोने लगे। उस व्यक्ति ने संत से उनके रोने का कारण पूछा, तो वे बोले—"बेटा! मेरे पास अन्न उपजाने की जमीन नहीं है। परमात्मा के एक अंश में माया है। माया के एक अंश में तीन गुण हैं। गुणों के एक अंश में आकाश है। आकाश के एक अंश में अग्नि है। अग्नि के एक अंश में जल है। जल के एक अंश में पृथ्वी है। पृथ्वी के एक अंश में उपजाऊ भूमि है। मैं अन्न कहाँ उपजाऊँ?" यह सुनकर व्यक्ति बोला—"अरे! आप रोते क्यों हैं? आज जीवित तो हैं न।" यह सुनकर संत बोले—"पुत्र! तो तुम भी समय के होते हुए अल्पकाल का रोना क्यों रोते हो। जितना भी समय मिला है, उसका उपयोग कुछ अच्छा करने के लिए करो।"

युगगीता – 311

सफलता-असफलता में समान रहने वाला करता है सात्त्विक कर्म

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की छब्बीसवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के पच्चीसवें श्लोक की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो कर्म मोहासक्त होकर और अपनी क्षमता का आकलन, परिणामों, हानि और दूसरों की क्षति पर विचार किए बिना आरंभ किए जाते हैं—वे तमोगुणी कर्म या तामसिक कर्म कहलाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण का कथन यहाँ पर स्पष्ट है कि जिनकी बुद्धि पर अज्ञान का आवरण चढ़ा है, वे इस विवेक से विहीन होते हैं कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? इनके संबंध में या तो वे असावधान होते हैं अथवा उदासीन। ऐसे व्यक्तित्व मात्र स्वयं में और अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में अभिरुचि रखते हैं। इसीलिए यहाँ भगवान कृष्ण ने 'क्षयं' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ क्षीण है अर्थात तामसिक कर्म करने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य और शक्ति के क्षीण होने का कारण भी बनते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण इस श्लोक में कहते हैं कि तामसिक कर्म करने वाला मनुष्य तो परिणाम की, कर्म करने के बाद मिलने वाले परिणाम की भी परवाह नहीं करता। राजसिक कर्म करने वाला व्यक्ति भले ही इच्छा के वशीभूत होकर कर्म को करे, पर उसे परिणाम की चाहत होती है। आदर, प्रतिष्ठा, अहंकारपूर्ति ही सही, पर उसके परिणामप्राप्ति का भाव मन में होता है, परंतु तामसिक कर्म वाला तो परिणाम के प्रति पूर्णरूपेण उदासीन होता है। सारांश में तमोगुण के प्रभाव से युक्त मनुष्य कर्म करते समय उसके परिणाम, उससे होने वाले नुकसान, प्रभाव एवं स्वयं की सामर्थ्य का, उचित-अनुचित का ध्यान न रखते हुए जैसा मन करे, वैसा कर्म कर गुजरता है। इस तरह के कर्म तामसिक कर्म कहलाते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्यौर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते ॥ 26॥

शब्दविग्रह—मुक्तसङ्गः, अनहंवादी, धृत्युत्साहसमन्वितः, सिद्धसिद्ध्योः, निर्विकारः, कर्त्ता, सात्त्विकः, उच्यते।

शब्दार्थ—कर्त्ता (**कर्त्ता**), सङ्गरहित (**मुक्तसङ्गः**), अहंकार के वचन न बोलने वाला (**अनहंवादी**), धैर्य और उत्साह से युक्त (तथा) (**धृत्युत्साह समन्वितः**), कार्य के सिद्ध होने और न होने में (**सिद्ध्यसिद्ध्योः**), विकारों से रहित है (वह)(**निर्विकारः**), सात्त्विक (**सात्त्विकः**), कहा जाता है (**उच्यते**)।

अर्थात जो कर्त्ता संगरहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य एवं उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विचारों से रहित है—वह सात्त्विक कहा जाता है। तामसिक

और राजसिक कर्त्ताओं के भेद को स्पष्ट करने के बाद अब भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सात्त्विक कर्त्ता के विषय में समझाते हैं।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि सात्त्विक कर्म को करने वाला **'मुक्तसंगः'** होता है अर्थात उसका कर्मों को करने के प्रति, उनके परिणामों के प्रति राग नहीं होता एवं वो उनके प्रति रागरहित होता है। राग का अर्थ ही यह है कि व्यक्ति उस कर्म को मात्र इसलिए करता है कि मनोनुकूल परिणाम की प्राप्ति हो। रागयुक्त कर्म का आधार कामना, वासना, आसक्ति, स्पृहा, ममत्व आदि बनते हैं; जबकि सात्त्विक कर्मों को करने वाला इनके प्रति किसी भी तरह की लिप्तता से मुक्त होता है।

इसके साथ यह भी सत्य है कि जो करने के राग से युक्त होगा, वह उनके प्रति अहंकार से भी मुक्त होता है। जिनके पास कर्मों को करने का अहंकार होता है, वे आसुरी शक्तियों से युक्त होते हैं एवं उनके द्वारा किए गए कर्म दूषित परिणामों को प्रदान करते हैं। इसके विपरीत जो सात्त्विक कर्मों को करते हैं, उनमें न केवल कर्म करने का अभिमान नहीं होता, वरन अभिमान न होने का अभिमान भी नहीं होता।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने यहाँ जिस शब्द का प्रयोग किया है, वह है **'अनहंवादी'**—अर्थात सभी तरह के अहंकारों से मुक्त। कई बार व्यक्ति कर्म करने के अभिमान से मुक्त हो जाता है, पर उसके बाद उसके मन में यह अभिमान आ जाता है कि मैं अभिमान से भी मुक्त हूँ। उग्रता भी अभिमान से युक्त होती है तो कई बार उग्र न होने का अभिमान भी हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति सभी तरह के अहंकारों से मुक्त होता है।

इसी के साथ सात्त्विक कर्म करने वाले व्यक्ति में अद्भुत धैर्य होता है। कर्त्तव्य कर्म को करते हुए यदि विघ्न-बाधाएँ आती भी हैं तो न केवल उसकी धीरता यथावत् बनी रहती है, वरन उसका उत्साह भी कभी मंद नहीं पड़ता है। अच्छा होने पर, शुभ घटने पर उत्साह का बना रहना तो स्वाभाविक है, परंतु कष्ट-कठिनाई एवं विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य और उत्साह का बना रहना सात्त्विक कर्मों के कर्त्ता की पहचान बनता है। इसी को भगवान श्रीकृष्ण ने **'धृति उत्साह समन्वितः'** कहकर के पुकारा है।

प्रेम जब शरीर, परिवार तक सीमित रहता है, तो उसे मोह कहा जाता है, किंतु जब वह व्यापक आत्मीयता के रूप में प्रकट होता है तो भक्ति-भावना के रूप में सराहा जाता है।

अंत में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति सिद्धि व असिद्धि में, सफलता व असफलता में पूर्णतया संतुलित रहकर कार्य करता है। इन्हीं गुणों से युक्त व्यक्तित्व सात्त्विक कर्मों का कर्त्ता कहा गया है। इसीलिए आदिगुरु शंकराचार्य ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि व्यक्ति को सभी कामनाओं को त्यागकर कर्म करना चाहिए। यहाँ तक कि यह कामना भी त्याग देनी चाहिए कि 'ईश्वर मेरे पर प्रसन्न हो जाएँ।' जो सिद्धि-असिद्धि में सम है, वही निष्काम कर्म कर पाता है। ❑

विश्वविद्यालय परिसर से –250

सौभाग्य की त्रिवेणी का संवाहक बना विश्वविद्यालय

अखंड दीपक और वंदनीया माताजी की जन्मशताब्दी त्याग, तप और करुणा से सिंचित उस युगचेतना की स्मृति कराती है, जिसने साधना को सेवा और नारी-शक्ति को युग निर्माण का आधार बनाया। यह केवल उत्सव नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों को आत्मसात् कर समाज में संवेदना, संस्कार और समर्पण के विस्तार का संकल्प है। वर्ष-2026 भारतीय आध्यात्मिक इतिहास में एक युगांतकारी पड़ाव के रूप में दर्ज हुआ।

यह वर्ष उस दिव्य चेतना के शताब्दी पर्व का साक्षी बना, जिसने पिछले सौ वर्षों से मानवता को नैतिकता, संस्कार, साधना और सेवा के पथ पर निरंतर प्रेरित किया। अखिल विश्व गायत्री परिवार द्वारा आयोजित शताब्दी समारोह एक साधारण आयोजन न रहकर मानव चेतना के नवजागरण का विराट महापर्व सिद्ध हुआ। यह शताब्दी महोत्सव कल्याण और सौभाग्य की त्रिवेणी के रूप में प्रतिष्ठित रहा।

इसमें तीन ऐतिहासिक और आध्यात्मिक घटनाओं के सौ-सौ वर्ष एक साथ पूर्ण हुए—सन् 1926 में प्रज्वलित अखंड दीपक, परमवंदनीया माताजी के अवतरण तथा पूज्य गुरुदेव की तप-साधना के 100 वर्ष। भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में यह संयोग अत्यंत दुर्लभ माना गया और इसी कारण यह आयोजन वैश्विक महत्त्व का एक बार-शताब्दी में घटित होने वाला पर्व बन सका। शताब्दी समारोह के अंतर्गत भव्य एवं बहुआयामी कार्यक्रमों की शृंखला आयोजित की गई।

इन दिनों में प्रातःकालीन साधना, सामूहिक प्रार्थना, ध्यान, अमृतवाणी, प्रज्ञागीत, जप-सत्र, ज्योति कलश यात्राएँ, दीप महायज्ञ, सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ एवं वैचारिक संवाद संपन्न हुए। भूमि पूजन, वसुधा वंदन, तीर्थ-रज पूजन, दीपयज्ञ एवं ज्योति-संवर्द्धन जैसे अनुष्ठान संपन्न हुए, जिन्होंने पर्यावरण, संस्कृति और अध्यात्म के समन्वय का सजीव उदाहरण प्रस्तुत किया।

इस शताब्दी महोत्सव में देश-विदेश से एक लाख से अधिक गायत्री परिवार के साधक, कार्यकर्त्ता, युवा और विचारक सहभागी बने, जिससे आयोजन ने वैश्विक स्वरूप ग्रहण किया। कार्यक्रमों में भारत सरकार के केंद्रीय मंत्री, विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि, सांसद, संत-महात्मा, योगाचार्य एवं सामाजिक-वैचारिक नेतृत्व की गरिमामयी उपस्थिति रही।

शताब्दी वर्ष के मुख्य आयोजनों का शुभारंभ धर्मध्वजा-वंदन समारोह के साथ शताब्दी समारोह दलनायक की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में माननीय मुख्यमंत्री, उत्तराखंड सरकार तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में माननीय केंद्रीय संस्कृति मंत्री, भारत सरकार एवं माननीय कैबिनेट मंत्री, उत्तराखंड सरकार सहित अनेक गणमान्य व्यक्तियों की प्रेरक उपस्थिति रही।

इस अवसर पर साधना से परिपूर्ण वातावरण में आध्यात्मिक चेतना एवं राष्ट्रीय भावबोध से ओत-प्रोत होकर धर्मध्वजा का विधिवत् वंदन किया गया। गंगा की गोद और हिमालय की छाया में आयोजित इस ऐतिहासिक अवसर पर देश-विदेश के कोने-कोने से पधारे हजारों गायत्री परिजनों ने सहभागिता करते हुए शताब्दी वर्ष को युग-निर्माण का जन आंदोलन बनाने का संकल्प लिया।

परिजनों ने मानवता के सर्वांगीण कल्याण, सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना

हेतु प्रतिज्ञा की कि वे अपने कृतित्व से धर्मध्वजा को सदैव विश्व-पटल पर प्रतिष्ठित रखते हुए युग-निर्माण के महायज्ञ में सक्रिय सहभागिता निभाएँगे।

गायत्री परिवार द्वारा पर्यावरण संरक्षण को केंद्र में रखते हुए एक व्यापक वैश्विक संकल्प लिया गया। शताब्दी समारोह दलनायक ने जानकारी दी कि अखिल विश्व गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं ने ऋषियुग्म के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में सक्रिय योगदान देने का संकल्प लिया।

उन्होंने बताया कि इस संकल्प के अंतर्गत भारत के प्रत्येक जिले तथा विश्व के लगभग 80 देशों में 'वंदनीया माताजी स्मृति उपवन' की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया। साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में किसी-न-किसी स्थानीय सरोवर अथवा नदी के शुद्धीकरण का कार्य भी किया गया, जिससे पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ जल-स्रोतों के संवर्द्धन का अभियान साकार हुआ।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि स्वामी अवधेशानंद गिरि जी, स्वामी विश्वेश्वरानंद जी, स्वामी रामदेव, मुख्यमंत्री सलाहकार श्री मनु गौड़ जी, भारतीय नदी परिषद् संस्थापक श्री रमनकांत जी सहित पद्मश्री राजेंद्र वर्मा जी भी विशेष रूप से उपस्थित रहे। सत्र के दौरान देश-विदेश से उपस्थित हजारों गायत्री परिजनों तथा डिजिटल माध्यम से जुड़े लाखों स्वयंसेवकों को तरु-पूजन के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण का संकल्प दिलाया गया।

इसी क्रम में ज्योति कलश पूजन का भव्य आयोजन संपन्न हुआ। ज्योति कलश का पूजन गायत्री परिवार की अधिष्ठात्री श्रद्धेया जीजी, शताब्दी समारोह दलनायक द्वारा पुष्प-वर्षा के माध्यम से संपन्न हुआ। इस अवसर पर स्वामी हरिचेतनानंद जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय का सातवाँ दीक्षांत समारोह अत्यंत गरिमामयी वातावरण में संपन्न हुआ। यह समारोह शताब्दी समारोह के दलनायक एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी की अध्यक्षता में आयोजित किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि स्वामी अवधेशानंद गिरि जी, यूनाइटेड किंगडम के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के सदस्य लॉर्ड मेंडलसन एवं लॉर्ड कुमार रावल समेत देश-विदेश से पधारे अनेक प्रतिष्ठित शिक्षाविदों एवं विशिष्ट अतिथियों की गरिमामयी उपस्थिति रही।

प्रमुख रूप से हिमालयन विश्वविद्यालय अध्यक्ष, सरस्वती पटेल विश्वविद्यालय कुलाधिपति, स्वामी विवेकानंद विश्वविद्यालय कुलाधिपति, ऋषिहुड विश्वविद्यालय कुलाधिपति, सूरजमल विश्वविद्यालय कुलपति तथा उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय कुलपति की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। इसके अतिरिक्त उद्योग एवं अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र से श्री फिरोज़ एवं श्री ज़हान मिस्त्री (शापूरजी पालोनजी समूह) तथा श्री कार्तिकेय जौहरी, भारत के महावाणिज्य दूत (पोलैंड) की गरिमामयी सहभागिता ने समारोह की गरिमा को और अधिक बढ़ाया।

शताब्दी वर्ष के इस विशेष अवसर पर आयोजित दीक्षांत समारोह में विद्यार्थियों को पी.एच.डी., परास्नातक एवं स्नातक की उपाधियाँ प्रदान की गईं। उपाधिधारकों ने वंदनीया माताजी के आदर्शों एवं अखंड दीपक की प्रेरणा को आत्मसात् करते हुए समाज, राष्ट्र एवं वैश्विक मानवता के कल्याण हेतु सतत कार्य करने का संकल्प व्यक्त किया।

शताब्दी समारोह एवं राष्ट्र जागरण दीप महायज्ञ में अखंड ज्योति से लगभग 2.5 लाख दीपकों को मंत्रोच्चार के साथ प्रज्वलित किया गया तथा राष्ट्र-निर्माण, सामाजिक समरसता और विश्व-कल्याण की मंगलकामनाएँ की गईं। कार्यक्रम के मुख्य

अतिथि स्वामी गोविंददेव गिरि जी की गरिमामयी उपस्थिति ने आयोजन को विशेष आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान की।

इस दौरान केंद्रीय रक्षा मंत्री ने अपने वीडियो संदेश के माध्यम से गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं को राष्ट्र के सांस्कृतिक योद्धा बताया। उन्होंने कहा कि जहाँ एक ओर सीमा पर सैनिक बंदूक से देश की रक्षा करते हैं तो वहीं गायत्री परिजन, संस्कारों के माध्यम से देश को सुरक्षित रखते हैं। आगे उन्होंने कहा कि पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रज्वलित अखंड दीपक पिछली एक शताब्दी से भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना को निरंतर प्रकाशित करता आ रहा है। कार्यक्रम का शुभारंभ गायत्री परिवार की अधिष्ठात्री श्रद्धेया जीजी द्वारा अखंड दीपक को बैरागी द्वीप स्थित कार्यक्रम-स्थल पर स्थापित करने के साथ हुआ।

शताब्दी वर्ष के पावन अवसर पर 'राष्ट्र के जागरण का समय आ गया' विषयक भव्य आयोजन शताब्दी समारोह दलनायक की उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस आयोजन में भारत सरकार के माननीय गृह मंत्री श्री अमित शाह जी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे, जबकि हिमाचल प्रदेश के माननीय राज्यपाल श्री शिव प्रताप शुक्ल जी विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए।

अपने संबोधन में माननीय गृह मंत्री जी ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को एक हाथ में वेद और दूसरे हाथ में लैपटॉप लिए हुए देखकर उनका मन भीतर तक आश्वस्त हो गया। उन्होंने कहा कि जहाँ युवा वेद, उपनिषद् और पुराणों की महान परंपरा को विज्ञान और आधुनिक तकनीक के साथ आत्मसात् करते हुए आगे बढ़ते हैं, वहाँ भारत का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल होता है। उन्होंने आगे कहा कि भारत की वास्तविक शक्ति उसकी सांस्कृतिक चेतना और वैज्ञानिक दृष्टि के समन्वय में निहित रही है।

उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय को इस समन्वय का सजीव उदाहरण बताते हुए कहा कि यहाँ शिक्षा केवल अकादमिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह संस्कार, चरित्र और राष्ट्रबोध के निर्माण का प्रभावी माध्यम बनी। उन्होंने विश्वविद्यालय की विशिष्ट शिक्षापद्धति की सराहना करते हुए कहा कि यह भारत को वैश्विक नेतृत्व की दिशा में सशक्त रूप से अग्रसर कर रही है।

उन्होंने परमपूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के योगदान को स्मरण करते हुए कहा कि दोनों ने अपने एक ही नश्वर जीवन में अनगिनत लोगों को जीवन की दिशा प्रदान की। पूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण के दशकों बाद भी अखण्ड ज्योति न केवल प्रकाशित रही, बल्कि करोड़ों हृदयों में आत्मदीप के रूप में सतत प्रज्वलित होती रही और उनके द्वारा रोपे गए विचार आज युवा चेतना के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण का सशक्त स्वरूप ग्रहण कर रहे हैं।

शताब्दी समारोह समापन सत्र में माननीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान जी ने गायत्री परिवार के प्रयासों को राष्ट्र की आत्मा से जोड़ते हुए कहा कि यह पहल केवल आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं रही, बल्कि भारतीय समाज में संस्कारों के पुनर्जागरण का एक सशक्त अभियान बन चुकी है।

उत्तराखंड के माननीय राज्यपाल लेफ्टिनेंट जनरल (सेवानिवृत्त) श्री गुरमीत सिंह जी ने अपने संदेश में गायत्री परिवार की कार्यप्रणाली को अनुशासन, सेवा और राष्ट्रनिष्ठा का जीवंत उदाहरण बताया। उन्होंने कहा कि ऐसी संगठित चेतना ही समाज को दीर्घकालिक दिशा देने की वास्तविक शक्ति होती है। समापन समारोह वास्तव में एक नई चेतना की उद्घोषणा बन गया, जहाँ प्रत्येक सहभागी स्वयं को युग-निर्माण का सक्रिय वाहक अनुभव कर रहा था। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

पात्रता का विकास (उत्तरार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों में यह एक अद्भुत सामर्थ्य सन्निहित है कि जहाँ एक ओर वे साधना-पथ के किसी भी पथिक का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करते हैं तो वहीं दूसरी ओर जीवन की सामान्य समस्याओं से प्रताड़ित व्यक्तियों को भी अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में वंदनीया माताजी साधना-पथ पर सफलता अर्जित करने के लिए पात्रता के महत्त्व पर प्रकाश डालती दिखाई पड़ती हैं। वे श्रद्धा एवं पात्रता का महत्त्व, मीरा से लेकर संत रविदास के उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि साधना में सफलता मात्र वे ही प्राप्त कर पाते हैं, जो स्वयं को उन अनुदानों के लिए सत्पात्र बना पाते हैं। इस हेतु वे हर गायत्री परिजन को पूज्य गुरुदेव के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने को कहती हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को .....।

गांधी जी का उदाहरण

बेटे, ये उदाहरण उदारता के लिए दिए गए हैं, पर इसका मतलब यह नहीं है कि हम घर से फकीर बन जाएँ और घर को बिलकुल खाली कर दें, फर्ज और कर्त्तव्यों को ध्यान में न रखें, लेकिन पड़ोस की तरफ भी हम देखें कि आखिर हमारे पड़ोसी किस अभाव में जीवन काट रहे हैं और हम शानदार जीवन काट रहे हैं। गांधी जी का उदाहरण सुना है न कि गांधी जी जा रहे थे तो उन्होंने एक महिला को देखा, जो कि बड़ी पुरानी साड़ी पहने हुए थी। साड़ी फट रही थी। उन्होंने कहा कि बहन इस साड़ी को तुम धोती नहीं हो। उसने कहा कि आपने बहन कहा है तो आप यह बताइए कि मैं साड़ी को धोऊँ कैसे? मेरे पास जब एक ही साड़ी है तो मैं एक साड़ी को धोऊँगी कैसे?

उनको बात समझ में आ गई। उनके थैले में उनकी एक धोती रखी थी, उन्होंने कहा कि ले बहन! यह धोती तू ले जा और इस धोती से तू अपना तन ढक ले और इस धोती को तू धो ले। उसी दिन से गांधी जी ने आधी धोती पहनना शुरू किया। इसी तरीके से जापान में एक संत हुए हैं 'कागावा' जिन्हें जापान का गांधी कहते हैं। गांधी जी के तरीके से उनकी भी विचारधारा थी। गांधी जी अपने राष्ट्रपिता हो गए और वे भी जापान के राष्ट्रपिता हो गए।

स्वार्थ से नहीं बेटा, स्वार्थ यदि मन में होगा तो फिर स्वार्थ के वशीभूत होकर के हम कुछ नहीं पा सकते। स्वार्थ तो फिर स्वार्थ ही रहेगा, हमें परमार्थ की ओर कदम बढ़ाना चाहिए, हमारी उपासना सफल तभी होगी।

उपासना का मर्म

उपासना का मतलब क्या है? एक ही मतलब है कि जीवात्मा परमात्मा में मिल जाए। यह समर्पण है। उपासना भगवान के लिए की जाती है और साधना अपने लिए की जाती है। भगवान के लिए उपासना और अपने लिए साधना अर्थात अपने व्यक्तित्व को बनाना। व्यक्तित्व को बनाने के बाद फिर आती है समाज-सेवा—जिसको आराधना कहते हैं। आराधना के बगैर हमारी साधना अधूरी है, हमारी उपासना अधूरी है।

यदि हमने समाज-सेवा नहीं की है तो यह दोनों चीजें हमारी अधूरी हैं और यदि हमने की है तो उससे हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व बनता है। उस व्यक्तित्व से सारे समाज को, सारे राष्ट्र को हमारा सहयोग मिलता हुआ चला जाता है और उसके बदले में हमें सम्मान और सत्कार मिलता हुआ चला जाता है—यह आपको मालूम है।

भली भाँति मालूम है कि जितने भी हमारे संत हुए हैं, जिनको अनुदान और वरदान मिले हैं, वे स्वयं तो निहाल हुए हैं, लेकिन उनके पास कुछ नहीं रहा है। बेटे, गुरुजी के पास कभी भी कुछ नहीं रहा, एक नया पैसा तक उनकी जेब में नहीं रहता था। मिशन के लिए उन्होंने लाखों खरच किए और अपने लिए? अपने लिए वे एक नया पैसा खरच नहीं करते थे।

पूज्य गुरुदेव का उदाहरण

मैं आपको एक बात बताऊँ, शुरू- शुरू की बहुत पुरानी बात है कि मुझे लेने के लिए आगरा गए तो कुछ पड़ोस की जो लड़कियाँ थीं, वे मुस्कराईं और उन्होंने देखा कि गुरुजी जो धोती पहने हुए हैं, उसमें थेगड़ी लग रही है। उन्होंने कहा कि जब इनको मालूम था कि हम लेने जा रहे हैं तो फिर ऐसे कैसे आए। वे लड़कियाँ जो थीं, मुस्कराईं। मैंने लड़कियों को डाँटा और कहा कि तुम यह मत समझो कि हम गरीब हैं।

नहीं, हम भिखमंगे नहीं हैं, गरीब नहीं हैं, पर हमारा रहन-सहन जो है, वह गरीबों का-सा है, क्योंकि हमने बना रखा है। जब हमने बना रखा है, तो फिर तुम क्यों हँसती हो? उनका जो रहन-सहन था, वह मैंने आपको बताया है।

बेटे, कई बार मेरा साथ जाना हुआ तो मैंने देखा कि एक बार उनकी धोती फट गई मैंने तो धो करके, साफ करके, अच्छी देख करके रखी थी, मुझे क्या मालूम कि यह इतनी घिस गई है कि पहनते ही फट जाएगी। वह पहनते ही फट गई तो मुझे अपने ऊपर बहुत क्षोभ आया कि मैंने धोती को देखा नहीं, कम-से-कम पलट करके देखती तो सही। तो मैंने उनसे कहा कि आप ऐसी धोती पहने हुए हैं, आप दूसरी बदल लें।

उन्होंने कहा कि देखो हम मीलों आगे निकल आए हैं, अब मीलों पीछे जाएँ तब धोती को बदलकर आएँ। इससे तो ऐसे ही भली है, कोई नहीं देखता है। लोग धोती को देखते हैं या हमारे व्यक्तित्व को देखते हैं। व्यक्तित्व होता है कि यह बनावटीपन होता है? बनावटीपन उनके जीवन में जरा भी नहीं था। उपासना की तो उन्होंने हृदय से की, साधना की तो उन्होंने हृदय से की और आराधना की तो उन्होंने हृदय से की—जिसमें आप लोग जुड़े हुए हैं।

इनमें कई एक तो पुराने बैठे हैं, जो कभी मिलते थे, उनसे बातचीत करते थे। क्या वे जिंदगी भर भूल पाएँगे? बेटे! वे नहीं भूल पाएँगे। उनको कोई भी नहीं भूल सकता है, जो भी कोई उनसे जुड़ा है और उनके समीप बैठा होगा, वह कभी भी नहीं भूल सकता। उनके अंदर यह विशेषता थी, उनके अंदर वह चिपकने वाला माद्दा था, जिससे

कि व्यक्ति चिपकता हुआ चला जाता था और यह कहता था कि यह तो हमारी माँ हैं। माँ का जैसा प्यार उनके हृदय में लबालब भरा हुआ था।

दीन-दुःखियों की सेवाएँ अपने ऊपर कोई ली होगीं तो ली होगीं, लेकिन दूसरे को उन्होंने हमेशा बचाया होगा, उनको हिम्मत देने वाली बात कही होगी। उन्होंने हमेशा हिम्मत देने वाली बात कही है, गिराने वाली बात कभी भी नहीं कही।

गुरुदेव ने सबको उठाया

जरा-जरा से लड़के जिन्हें उन्होंने उछालकर कहाँ-से-कहाँ रख दिया। जो जाते हैं तो उनका सम्मान होता है, गले में माला पड़ती है। आप जानते हैं कि उन्होंने इस समाज और राष्ट्र को कितना दिया है तो उसके बदले में पाया भी है। श्रद्धा पाई और शरीर के न रहने पर भी लोगों के मन में अपार श्रद्धा है।

आप कहेंगे कि वह श्रद्धा कैसे देखी जाए कि लोगों में है या नहीं है? तो आप कहीं जाना, जहाँ कि अश्वमेध यज्ञ हो रहे हों, वहाँ आप जाना तो आपको मालूम पड़ेगा कि किस कदर जनसमूह उमड़ पड़ता है, जहाँ सुनता है कि माताजी आ रही हैं, वहाँ इस कदर जनसमूह उमड़ पड़ता है कि मैं आपसे क्या कहूँ। हम उनको क्या देकर के आते हैं जरा बताना।

गरीब लोग बेचारे हमसे मिल भी नहीं पाते, उनकी इच्छा होते हुए भी पास तक नहीं आ पाते हैं। इससे मन में बड़ी पीड़ा होती है कि हमारा यहाँ आना बेकार रहा कि हम मिल भी नहीं पा रहे हैं। पर इन लाखों व्यक्तियों से कैसे मिला जा सकता है? मिला भी नहीं जा सकता तो फिर यह कहना पड़ता है कि आप खुली गाड़ी लेकर के आइए, ताकि यह बच्चे हमारी शक्ल ही देख लें तो उसी से अपना मन समझा लेंगे।

भिलाई में तो वह भी नहीं हुआ था। उन्होंने कहा कि माताजी यहाँ खुली गाड़ी में आपको देख कर लोग उसी पर चढ़ बैठेंगे। इनकी भावनाएँ इस कदर उछल करके आ रही हैं कि छोड़ेंगे नहीं, आपका चलना मुश्किल हो जाएगा। बिलकुल ऐसा

फार्म—4

(1) प्रकाशन स्थान	मथुरा
(2) प्रकाशन अवधि	मासिक
(3) मुद्रक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
पता	जनजागरण प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा
(4) प्रकाशक का नाम	मृत्युंजय शर्मा
(5) संपादक का नाम	डॉ० प्रणव पंड्या
क्या भारत का नागरिक है	हाँ
पता	शांतिकुंज, हरिद्वार
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ. प्र.)

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिया गया विवरण सत्य है। —*मृत्युंजय शर्मा*

ही होता था, तब भी लड़कों की निगाह बचा करके मैं काँच को जरा नीचे कर देती थी और इसी में से हाथ हिला दिया करती थी।

इसी में से उन्होंने शक्ल देख ली और जब भीड़ होती थी तो फिर से लड़के झट से शीशा ऊपर कर देते थे। इसलिए कर देते थे कि अब तो यह मानेंगे नहीं तो किस कदर बचाव करेंगे पर मैं

बताती हूँ कि मेरे दिल में बहुत पीड़ा होती थी। बेटे! अभी मैंने श्रद्धा की बात कही कि किस कदर शरीर न रहने पर भी लोगों में कितनी अपार श्रद्धा है कि जो भी बात कही गई है, वह बात पूरी होती चली जाती है। जहाँ यह कहा कि अश्वमेध यज्ञ होगा, वहीं लोग जी-जान से टूट पड़े और उनमें शर्त लग गई कि हमारे यहाँ होना चाहिए, हमारे यहाँ होना चाहिए।

श्रद्धा का प्रवाह

जब मैंने उनके अंदर झाँक करके यह देखा तो मैं थोड़ा कंट्रोल करने लगी कि जब पास में हो रहा है तो तेरे यहाँ कैसे दे दें। तेरे यहाँ पीछे देंगे, अभी नहीं, थोड़े दिन बाद देंगे। देंगे तो सही, पर तुम्हें थोड़े दिन बाद देंगे, अभी नहीं देंगे। साहब! लोगों में इतनी श्रद्धा क्यों, कैसे हो गई? इसलिए हो गई कि वे गायत्री माता के भक्त थे, गायत्री माता का साक्षात्कार था, गायत्री माता उनके अंदर में समायी हुई थी, इसलिए उनके प्रति लोगों की श्रद्धा थी।

उन्होंने लोगों की जो सेवा, व्यक्तियों की जो सेवा की यह उसका बदला है। जो सेवाएँ और सहायताएँ उन्होंने कीं, उनके बारे में आप जानते नहीं हो। कल भी एक लड़की आई थी और उसने कहा कि माताजी देखिए मुझे कैंसर हो गया था और मैं कैंसर से बच गई। बेटे! हम भगवान तो हैं नहीं कि हम सबको बचा लेंगे, कैसे बचा लेंगे भाई?

भगवान भी जब प्रारब्ध को नहीं पलट सके तो हम कैसे पलट दें, पर लग जाता है जिसको लग जाता है, नहीं लग जाता है तो नहीं लगता है। लग जाता है, हाँ लग जाता है, सैकड़ों को, हजारों को लगा है, लाखों को लगा है, जो कि ऐसे पीड़ा-पतन में पड़े हुए थे और उनको कहाँ-से-कहाँ ले जा करके रख दिया।

वे अपने को धन्य मानते हैं, बेटे लोगों की, व्यक्तियों की श्रद्धा है और जनसमूह के लिए उनका पुरुषार्थ था, उनकी भावनाएँ थीं। उनकी जो भावना पीड़ा-पतन के निवारण के प्रति थी, वह है सारा-का-सारा रहस्य, उसको जब तक आप नहीं समझ पाएँगे, तब तक आपकी उपासना सार्थक नहीं होगी।

बगुलाभगत न बनें

गायत्री मंत्र में चौबीस अक्षर हैं और उसके प्रत्येक अक्षर के पीछे एक सिद्धांत है, एक भावना है, उसमें एक शिक्षण है। उन चौबीस अक्षरों में जो भावार्थ भरा पड़ा है, उसको आप हृदयंगम कीजिए और फिर उस पर आप अमल कीजिए। अमल यदि किया गया है तो फिर आपका समग्र व्यक्तित्व बनता हुआ चला जाएगा और अगर आपने ध्यान नहीं दिया, केवल माला ही सटकाते रहे तो फिर आप बगुलाभगत हो जाएँगे।

बगुलाभगत जानते हो क्या होता है? बगुला भगत ऐसा होता है कि बिलकुल चोंच नीचे किए नदी के किनारे बैठा रहता है और जहाँ उसको मछली दिखाई पड़ी कि चोंच उठाई और गपककर मुँह में ले जाता है। हमारे जो स्वार्थ हैं, वे निष्कासित नहीं होते, मनोकामनाएँ ढेर सारी हैं, न जाने क्या-क्या मनोकामनाएँ हैं, सबको निकालकर फेंको। आज पहला दिन है, सब मनोकामनाओं को आप यहीं हमारे पास रख जाओ।

दोष-दुर्गुण से मुक्त हों

एक दिन इस पर आपके लिए व्याख्यान भी होगा, नीचे लेक्चर होगा, उसमें आपको दो कागज दिए जाएँगे। एक वह दिया जाएगा, जिसमें कि आपकी जाने-अनजाने में जो बुराइयाँ होती रहती हैं, आप जिन बुराइयों की ओर प्रेरित होते रहते हैं, जो कर्म नहीं होने चाहिए, वह हमारे शरीर से, मस्तिष्क से होते रहते हैं।

दूसरा कागज होगा, जिसमें कि आप अपनी कष्ट-कठिनाइयाँ लिखेंगे। वह हमारे पास आ जाएगा और जो कुछ भी हम कर सकते होंगे, जो भी गुरुजी का दिया हुआ है, उसमें से जो कुछ भी आप

के पल्ले पड़ेगा तो हम जरूर आपको देंगे और आपकी मदद करेंगे।

बेटे, आप बिलकुल खाली हो जाइए। इस वातावरण में आप पकिए, यह कुम्हार का अवा है। कुम्हार के आँवें में बरतन पकते हैं। यदि बरतन कच्चा रह गया है तो उसमें से पानी निकल जाएगा, क्योंकि वह कच्चा रह गया है। पक गया है तो पानी उसमें ठहरेगा। इसी तरीके से अपने भाग्य को दोष नहीं देना है, बल्कि अपनी क्रिया को दोष देना है कि हम जो क्रिया करते हैं, जो हमारे अंदर दोष और दुर्गुण हैं, उनको धिक्कारिए।

आप उसको निकालिए, नहीं तो वही कहावत आ जाएगी कि चलनी में दुहे और कर्म टटोले। कर्म को, भाग्य को कोसता है और अपने कर्तृत्व को नहीं देखता कि हमारा कर्तृत्व क्या है। अपने कर्तृत्व की ओर देखिए, फिर देखिए आपका कैसा शानदार जीवन होता है। इतना शानदार जीवन होगा कि आप भी निहाल हो जाएँगे और समीपवर्ती जो भी आपके संपर्क में आएँगे, वे भी निहाल हो जाएँगे।

मेरी चाल देख लो

गुरुजी एक बात कहते थे, अब मैं भी हँसा दूँ आप लोग इतनी देर से गंभीर होते जा रहे हैं। गुरुजी एक उदाहरण दिया करते थे। मैंने एक बार कहा कि इसका मतलब क्या होता है आप जरा मुझे बताइए। उन्होंने कहा कि माने-मतलब से क्या करना है, मुझे तो सब चीज अध्यात्म से जोड़नी है। वे एक उदाहरण बहुत ही देते थे। कौन-सा देते थे? यह कहते थे—"मेरे पैरों में घुँघुरू बँधा दो और फिर मेरी चाल देख लो"।

मैंने कहा कि यह तो गाना है। उनको गाना तो आता नहीं था, मुझे तो भी थोड़ा-बहुत टूटा-फूटा आता है, पर उनको गाना नहीं आता था। इसलिए उन्होंने मुझे गाना सिखाया कि तुम सीख लो मुझसे तो नहीं आया। मैंने तो तानपूरा लिया और थोड़े दिन में सीख लिया। सिखाने वाला बोला कि गुरुजी आप रहने दें, माताजी सीखना चाहें तो वे सीख सकती हैं।

उन्होंने कहा कि तुम्हें कैसे मालूम कि माताजी सीख सकती हैं और मैं नहीं सीख सकता। यह देखिए आपका राग, इसमें कुछ मिलता ही नहीं है तो उन्होंने उसे खूँटी पर टाँग दिया और थोड़े दिन में झटका लगा तो वह टूट गया। मुझे थोड़ा-बहुत शौक भी था तो मैं फिर आगरा से बाजा खरीद लाई और दो महीने में सीख लिया। अभी वही चल रहा है। तो गुरुजी उसको बराबर कहते थे कि "मेरे पैरों में घुँघुरू बँधा दो कि फिर मेरी चाल देख लो"।

राजा ने संन्यास ग्रहण कर लिया। गुरु के समीप जाकर बोले—"गुरुदेव! दुष्प्रवृत्तियों से लड़ने के लिए क्या करूँ? कहाँ जाकर उनसे युद्ध करूँ?"

गुरु बोले—"वत्स! साधना एक ऐसा संघर्ष है, जो अपनी ही दुष्प्रवृत्तियों से करना होता है। जो इस संग्राम में जितना सफल होता है, वह उतना ही सुसंस्कृत व महान बनता है।"

चाल देख लो अर्थात हमें भगवान की वह शक्ति मिल जाए और हम उस शक्ति को पा करके उसके तरीके का नाच नाच सकें। मैंने कहा कि यह खेल तो संघर्ष का है आप क्या कह रहे हैं, ये मत कहो। उन्होंने कहा कि होगा, संघर्ष का होगा चाहे जिसका होगा, पर मुझे तो उदाहरण बड़ा अच्छा लगता है, इसलिए मैं कहता हूँ। बेटा, जीवन जीना है तो एक खिलाड़ी के तरीके से जिओ।

खिलाड़ी के तरीके से जिएँ

जिस तरीके से खिलाड़ी स्टेज पर आते हैं तो मुखौटे लगाकर आते हैं, कोई राम बनकर आता है,

कोई कृष्ण बनकर आता है, कोई क्या बनकर आता है तो क्या वस्तुतः वह कृष्ण है या राम है। न वो राम है, न वो कृष्ण है, वह एक मुखौटा है। आप अपने जीवन को ही खिलाड़ी के तरीके से मान लीजिए तो आपका संतोषमय जीवन कटता हुआ चला जाएगा।

दीन-दुःखियों की सेवा के लिए फिर आपके अंदर एक पीड़ा पैदा होगी और उस पीड़ा को लेकर के जब आप जाएँगे तो रामकृष्ण परमहंस के तरीके से सर्वत्र आपको भगवान दिखाई पड़ेगा। रामकृष्ण परमहंस से एक पादरी ने पूछा और यह कहा कि हमने सुना है कि आप कालीमय हैं। क्या भगवान को आप दिखा सकते हैं? उन्होंने कहा कि भगवान इन चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता है, लेकिन एक रूप में भगवान को हम देख सकते हैं। वह कौन-सा स्वरूप है?

उन्होंने कहा कि कुटिया में आ जाना आपको दिखा दिया जाएगा और उनको एक कोढ़ी की सेवा करते हुए दिखा दिया, जिस तरीके से माँ अपने बच्चे की सेवा करती है, उस तरीके से परमहंस ने सेवा की। पादरी ने देखा कि यह तो बिलकुल माँ कालीमय ही हैं और वह चरणों में गिर पड़ा।

रामकृष्ण परमहंस का उदाहरण

इस तरीके से एक और उदाहरण है कि उन्होंने विवेकानंद से यह कहा कि विवेकानंद एक कटोरे में शहद रखा हो और तुम मक्खी हो तो तू यह बता कि शहद को अंदर से पिएगा कि पास से ही पिएगा। उन्होंने कहा कि देखिए गुरुदेव! मैं यदि मक्खी बना तो दूर से ही शहद चाट लूँगा, मैं कटोरे में जाने वाला नहीं हूँ। उन्होंने कहा कि तो तू डर गया, तू मृत्यु से डर गया और तू उस शहद में संपूर्ण नहाया नहीं; जबकि तुझे पूरे शहद में ही डुबकी लगानी चाहिए थी और पूरे शहद को ही तुझे चाटना चाहिए था, चाहे तेरे प्राण ही क्यों न चले जाते।

बेटे, यही बात आपके ऊपर भी लागू है कि आप आए हैं तो इस वातावरण में ऐसे घुल जाइए कि बस, तुम्हारे सामने दीन-दुनिया और कुछ रहे ही नहीं, न आपकी कोई मनोकामना रहे, न आपका कोई दुःख-कष्ट रहे। आप सही मानना कि आप जो दुःख-कष्ट लेकर के आए हैं, वे आपके कम होने वाले हैं।

कम होंगे ही, इसमें दो राय नहीं है, पर शर्त यही है कि आपकी मनोभूमि कैसी है। आपकी मनोभूमि इस लायक है कि आपने यहाँ जो भोजन किया है, वह आपने प्रसाद का रूप मानकर धारण किया है तो आपको बल मिलता हुआ चला जाएगा, आपकी बीमारी कम होती हुई चली जाएगी। देख लेना आपकी बीमारी कम होती हुई चली जाएगी; क्योंकि वह इस वातावरण में पकी है।

यह वातावरण बड़ी मुश्किल से गुरुजी ने अपनी तपस्या से, अपनी साधना से, अपनी आराधना से बनाया है। जहाँ अखंड दीपक है, उस अखंड दीपक के पास उन्होंने 24-24 लक्ष के 24 पुरश्चरण किए। आपको भी इसी तरीके से चलना है।

भगवान करे आपकी उपासना फलीभूत हो, पर फलीभूत तभी होगी, जब आप अपने अंतःकरण को साफ-सुथरा बनाएँगे। इस हृदय-कमल को खिलने दीजिए, ताकि गायत्री माता आपके हृदय-कमल पर विराजमान होती हुई चली जाएँ। आपके हृदय में कूड़ा-कबाड़ा भरा हुआ है तो फिर बताइए किस तरीके से गायत्री माता आपके पास आएँगी, वे नहीं आएँगी।

वे बहुत होशियार हैं, दयालु भी हैं, करुणामय भी हैं, सब कुछ है, पर होशियार भी बहुत हैं। उनसे ज्यादा होशियार भी कोई नहीं है। वे गंदे-गलीज पर नहीं बैठती हैं, चूहे पर नहीं बैठेंगी, कबूतर पर नहीं बैठेंगी, वे हंस पर बैठेंगी, जो विवेकशील होता है। नीर और क्षीर का जिसको विवेक होता है, ज्ञान

होता है, उदार होता है, उसके ऊपर आकर के गायत्री माता बैठती हैं।

आप हंस बनने की कोशिश करना, आप कौआ बनने की कोशिश मत करना। आप हंस बनिए, ताकि आपके कंधे पर आकर के गायत्री माता बैठें, जिसके लिए आप आए हैं और नौ दिवसीय सत्र करने के लिए आए हैं तो आपको उसमें सफलता मिले। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ ।

॥ ॐ शांतिः ॥

राजा रघु ने सर्वमेध यज्ञ किया। अपनी संपूर्ण संपदा लोकहित में दान दे दी। ऋषि कौत्स तक उनकी दानवीरता की कथा पहुँची तो वे धन की आकांक्षा से राजा रघु के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर देखा कि रघु तो सब कुछ दान दे चुके हैं। वे वापस लौटने लगे तो राजा रघु ने उन्हें रोककर आने का कारण पूछा। ऋषि कौत्स बोले—''महाराज! गुरु दक्षिणा को चुकाने हेतु कुछ धन की आवश्यकता थी। इसलिए आपके पास आया था, परंतु यहाँ की स्थिति भिन्न है। मैं अन्यत्र चला जाता हूँ।''

राजा रघु बोले—''नहीं ऋषिवर! आप यहीं रुकें।'' यह कहते हुए उन्होंने कुबेर के पास संदेश भेजा। कुबेर ने बिना कारण पूछे राजा रघु के पास सहस्त्रों स्वर्णमुद्राएँ भेज दीं। राजा ने वे सारी ऋषि कौत्स को दान दे दीं। कौत्स ने कुबेर से आश्चर्यचकित होकर पूछा—''आपने इतना धन राजा को बिना उद्देश्य जाने ही दे दिया।'' कुबेर बोले—''ऋषिवर! जो व्यक्ति धर्म की रक्षा के लिए अपने समस्त संसाधन लगाते हैं, उनके वचन की रक्षा करने का दायित्व भी धर्म का ही है। यदि मैं यह सहायता न भेजता तो आज धर्म कलंकित हो जाता।''

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

आध्यात्मिकता का आत्मसत्य

आध्यात्मिकता का आत्मसत्य—परिष्कार के परिणाम में अनुभव होगा। भावी भविष्य में सभी समान रूप से पवित्रता व परिष्कार के महत्त्व को समझेंगे। अभी की स्थिति में तो नासमझी को ही समझदारी समझा जा रहा है। धर्म का सच बस मतों व पथों के आपसी झगड़े में फँसकर-उलझ कर रह गया है। एकदूसरे के धार्मिक प्रतीकों का अपमान, परस्पर नीचा दिखाने की प्रवृत्ति, अपने को बड़ा कहने, बड़ा समझने की वृत्ति बढ़ती जा रही है। धर्म के ये झगड़े इतने ज्यादा हैं कि इसके सार-स्वरूप अध्यात्म की बात तो भुला ही दी गई है। पवित्रता और परिष्कार तो बस शब्द बनकर रह गए हैं। अगर कहीं भूले-बिसरे इसका परिचय मिला भी, तो यह बस शरीर के नहलाने-धुलाने तक सीमित है। अध्यात्म का आत्मसत्य एवं इसकी व्यापकता में परमात्मा की अनुभूति अब किसी को याद नहीं रही। अगर कहीं कोई याद बची है, तो बस, दार्शनिक विचार-विमर्श में इसकी चर्चा-परिचर्चा हो जाती है।

जबकि अध्यात्म की वर्णमाला जीवन की सही समझ का आधार है। इसी में जीवन का उद्धार और जीवात्मा की सद्गति है। भगवान श्रीकृष्ण का वचन—**'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्'** अपनी आत्मा का उद्धार करो, इसे अवसाद में मत डालो—इसी की ओर संकेत करता है। इस वचन को सार्थक व चरितार्थ करने के लिए अध्यात्म का आत्मसत्य अनिवार्य है। इसकी अनुभूति के लिए जब पवित्रता या परिष्कार की बात कही जाती है, तो उसकी सीमा केवल देह तक सिमटी नहीं है। हालाँकि देह या देह से जुड़ी वस्तुओं का परिष्कार कम आवश्यक नहीं है, क्योंकि इसका संबंध सीधा हमारे स्वास्थ्य से है। देह के परिष्कार में शरीर की सफाई, वस्त्रों का साफ होना आवश्यक है; क्योंकि इससे हमें उन कीटाणुओं-विषाणुओं से छुटकारा मिल जाता है, जो शरीर को अस्वस्थ या बीमार कर सकते हैं। बात जब देह से जुड़ी चीजों की आती है, तो सबसे पहले खान-पान या भोजन का विचार होता है। सात्त्विक, शाकाहारी, पौष्टिक भोजन को सर्वोत्तम माना गया है। इसका सुपाच्य व ताजा होना भी जरूरी है। इसमें यदि लहसुन-प्याज, मिर्च-मसाले, घी-तेल के अतिरेक से परहेज किया जाए, तो उचित है; क्योंकि ये पदार्थ शाकाहारी भोजन की सात्त्विकता छीन लेते हैं। उसे तामसिक, राजसिक, गरिष्ठ व अपाच्य बना देते हैं।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि योगशास्त्रों में, अध्यात्म शास्त्रों में जब-जब भोजन की चर्चा की गई है; तो केवल इसलिए, ताकि हमारा शरीर स्वस्थ और हलका रह सके। इसके लिए भोजन पर नियंत्रण-नियमन आवश्यक है। देह में जब सात्त्विकता सघन होती है, स्वास्थ्य अच्छा होता है, तो साधना में सहायता मिलती है। तन मन को अपनी ओर खींचता-पकड़ता या जकड़ता नहीं है। देह की इस खींच-तान-पकड़ या जकड़ से मुक्त हो जाने पर मन सहज ही ऊर्ध्वगामी हो जाता है। तब आत्मोन्मुख होना इसका स्वभाव बन जाता है। भोजन के अलावा देह का जुड़ाव—रहने के स्थान से है। इसकी सफाई व सुव्यवस्था उतनी ही आवश्यक है, जितनी की देह और पहने जाने वाले वस्त्रों की। इसलिए इन सबका साफ-स्वच्छ होना अनिवार्य है।

इस अनिवार्यता को हम प्राय: अपने जीवन में अपनाते भी हैं और स्वीकारते भी हैं। देह, वस्त्र और घर की मलिनता शायद ही किसी को पसंद आती हो। हाँ, सारी गड़बड़ खान-पान में हो जाती है। स्वादलोलुपता, चटोरापन प्राय: इसका कारण बनते हैं। स्वास्थ्य के लिए स्वाद पर नियंत्रण रख लेना जीवन की समझदारी है। ऐसा करने पर हम आसानी से शरीर के अनेक कष्टों-व्याधियों-बीमारियों से छुटकारा पा सकते हैं। यह सब कर पाने की क्षमता हमें पवित्रता-परिष्कार का पहला पाठ तो पढ़ा ही देती है।

इसका अगला पाठ—वाणी का है। ज्यादा बोलना; सही समय पर सही ढंग से अपनी बात न कह पाना; कड़वी-चुभती हुई बातें कहना; हास-परिहास में या फिर जान-बूझकर औरों का अपमान करना; दूसरों का दिल दुखाना—ये सभी वाणी के दोष हैं। इनका यथाशीघ्र परित्याग कर देना चाहिए। वाणी में सरलता, मधुरता, अपनापन और सम्मान—वाणी के गुण हैं। इसमें यदि परिष्कृत भाषा जुड़ जाए, तो इसका प्रभाव और भी बढ़ जाता है। बातों में स्पष्टता, औचित्य एवं बिंदुवार कहने की आदत—वाणी को सुगंधित कर देती है। यही सारे तत्त्व वाणी को कुशलता का कौशल प्रदान करते हैं। इससे अपना व्यक्तित्व प्रभावी बनता है, साथ ही निरर्थक के तनाव की नौबत नहीं आती है।

'पवित्र व प्रभावी वाणी' का पाठ पढ़ लेने के बाद 'कर्म व व्यवहार' अगला पाठ है। कर्म व व्यवहार की जटिलता हमारा जन्मों-जन्मों तक पीछा नहीं छोड़ती। जबकि कर्म व व्यवहार की कुशलता से हमारे अनेकों दु:ख सहजता से दूर हो जाते हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने तो कर्मों की कुशलता को योग की प्रतिष्ठा प्रदान की है। इस संदर्भ में पहला कर्म सत्य यह है कि हमें अपने द्वारा किए जाने वाले कर्मों को विवेक की कसौटी पर अवश्य कसना चाहिए। ऐसा कर्म जिससे किसी की हानि होती हो, उसे आघात होता हो—नहीं करना चाहिए। यह सत्य कभी नहीं भूलना चाहिए कि किसी को दु:ख देकर कभी कोई सुखी नहीं होता। हाँ, थोड़ी देर के लिए सुख पाने की भ्रांति अवश्य हो जाती है—जो जल्दी ही टूट जाती है।

इस संबंध में दूसरा कर्म सत्य यह है कि हमें सदा ही सार्थक, सकारात्मक व शुभ कर्म करने के लिए तत्पर होना चाहिए। हमारे शुभ कर्म ही पुण्यकर्म बनते हैं। इन्हें करने में कभी चूकना नहीं चाहिए; जबकि अशुभ, नकारात्मक व निरर्थक कर्मों से हमें दूर ही रहना चाहिए। जैसे कि सेवा-सहायता हर युग के शुभ कर्म हैं। इसके स्थान पर पर-पीड़ा को हर युग में अधर्म कहकर अस्वीकार किया गया है।

कभी इस सत्य से ध्यान न भटके, न भूले कि आध्यात्मिकता आत्मसत्य में है, न कि अहंता के संवर्द्धन में। आध्यात्मिकता जीवन के हर आयाम का परिमार्जन व परिष्कार है। आने वाले समय में इसे आसानी से समझा जाएगा। तब मत व पथ के झगड़ों के लिए कोई स्थान न बचेगा। अध्यात्म वाद-विवाद न रहकर जीवन-साधना के रूप में जीवन में परिलक्षित होगा।

कर्म का तीसरा सत्य यह है कि कर्म न करने की प्रवृत्ति, जो प्राय: आलस्य-प्रमाद के कारण होती है—इसका यथाशीघ्र, यथासंभव त्याग कर देना चाहिए। शरीर, वाणी एवं कर्म—ये तीनों हमारे जीवन का बाहरी आवरण हैं। इनमें पवित्रता और परिष्कार का प्रयास हमें अध्यात्म की ओर उन्मुख करके आध्यात्मिकता को गति देता है।

जीवन में इस बाहरी पवित्रता की साधना सध जाने से आंतरिक पवित्रता में गतिशील होना संभव हो पाता है। इसमें सबसे पहला क्रम—मन-बुद्धि का है। कल्पना, विचार व भावना का क्षेत्र यही है। जीवन की सद्बुद्धि अथवा सन्मार्ग की व्यवस्था यहीं से बन पड़ती है। इस क्षेत्र में व्याप्त अपवित्रता हमें बरबस दुर्बुद्धि या कुमार्ग की ओर धकेल देती है, जिससे समूचा जीवन क्रम संकटों-आपत्तियों में फँसता-उलझता चला जाता है। यदि मन-बुद्धि में सच्चिंतन, सद्विचार व सद्भाव हर स्थिति में बनाए रखे जाएँ, तो इस क्षेत्र की पवित्रता का प्रयास सफल होता है। इसके लिए संकीर्णता, दुर्भाव व दुर्विचार के दुश्चिंतन से जितना अधिक दूर रहा जा सके, उतना ही श्रेष्ठ व शुभ है।

आंतरिक अहंता या अभिमान इसके दूसरे क्रम में आते हैं। दिखावा, प्रदर्शन, आधिपत्य या अधिकार जमाने की प्रवृत्ति के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। इस पर अंकुश लगाने के लिए उदारता व सहनशीलता का सुयोग, संयोग व सहयोग जरूरी है। इससे अहंता का अभिशाप न अपने को अभिशप्त कर पाता है और न औरों को। अहं से उपजी अहंमन्यता—अहंता और अभिमान, आध्यात्मिकता के आत्मसत्य का जबरदस्त आवरण हैं। इससे न जाने कितने दुर्गुण व दुष्प्रवृत्तियाँ अनायास उपजने लगती हैं। इसलिए इसको यथाशीघ्र उखाड़ फेंकना चाहिए।

इसके अगले क्रम में चित्त है। यह नदी-नाला नहीं है, जिसे आसानी से पार किया जा सके। यह तो महासागर है, जिसे पार करने के लिए साधना का समर्थ जलयान चाहिए। शास्त्रों-शास्त्रकारों ने समस्त अध्यात्म-साधना का उद्देश्य चित्तशुद्धि ही कहा है। चित्त की पवित्रता व परिष्कार हो जाने से सब कुछ स्वतः ही शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र, परिष्कृत हो जाता है। तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की सीख इसी के लिए दी गई है। चित्त में एक नहीं, अनेक परतें हैं। इसकी एक परत एक जन्म की कहानी कहती है। हमारी कर्मराशि व संस्कारों का समुच्चय इसी में है। इसकी स्वच्छता सभी के लिए बड़ी चुनौती है, जिसे स्वीकारने व संपन्न करने पर आध्यात्मिकता का आत्मसत्य उजागर होने लगता है। इस असंभव को संभव करना ही मानव के जन्म व जीवन का मकसद है। इसके लिए किसी आयु या उम्र की प्रतीक्षा किए बिना तत्काल संलग्न हो जाना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले अपनी जीवनशैली को इसके योग्य बना लेना उचित है। तब शरीर, वाणी व कर्म-व्यवहार की बाधाएँ हमारा मार्ग नहीं रोक पातीं।

इसका अगला चरण साधना का है। जप, ध्यान, व्रत, उपवास सभी का समुचित प्रयोग इसके लिए आवश्यक है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण सत्य यह है कि साधना से उत्पन्न हुई आध्यात्मिक ऊर्जा को केवल चित्तशुद्धि के प्रयोग-उपयोग में लाना उचित है। साधना-पथ पर अधिक दूर चलने पर सिद्धियाँ, विभूतियाँ भी प्रकट होती हैं। इन्हें तत्काल अस्वीकार करना होगा। यदि इन्हें तनिक-सा स्पर्श भी किया गया, तो अहंता के अवरोध ही बढ़ते हैं। इन्हें भी चित्त की अशुद्धियों के रूप में ही देखना ठीक है।

कभी इस सत्य से ध्यान न भटके, न भूलें कि आध्यात्मिकता आत्मसत्य में है, न कि अहंता के संवर्द्धन में। आध्यात्मिकता जीवन के हर आयाम का परिमार्जन व परिष्कार है। आने वाले समय में इसे आसानी से समझा जाएगा। तब मत व पथ के झगड़ों के लिए कोई स्थान न बचेगा। अध्यात्मवाद—विवाद न रहकर जीवन-साधना के रूप में जीवन में परिलक्षित होगा। भावी समय में मानव जीवन के इसी उद्देश्य को सभी सहजता से स्वीकारेंगे। फिर इसे जीवन के चार रूपों—संयमी, साधु, तपस्वी व ऋषि के चतुर्दिक आयामों में देखा जा सकेगा। ❑

जाग्रत आत्माएँ भावभरे अनुदान प्रस्तुत करें

प्रज्ञा परिवार में जिनके बारे में निरंतर चर्चा, उत्साहवर्द्धन और प्रेरणा का वातावरण सृजित होता रहा है, वे हैं—ऐसे दिव्य व्यक्तित्व, जिन्होंने समाज को नवजीवन देने हेतु अपने सुख-दुःख, सुविधा और साधनों को सहर्ष निछावर कर दिया। ये वे आदर्श आत्माएँ हैं, जिन्होंने अपने जीवन को उच्च आदर्शों और श्रेष्ठ लक्ष्यों के लिए समर्पित कर दिया। परिवार का प्रत्येक सदस्य जब अपने अंतःकरण में झाँकता है तो वहाँ उसे निस्स्वार्थ सेवा और आत्मदान की प्रेरणा ही मिलती है।

यही कारण है कि यहाँ की संस्कृति में परमार्थ और सहयोग की महक हर क्षण विद्यमान रहती है। हम सबके जीवन में कभी-कभी कठिन प्रसंग आते हैं, किंतु ऐसे ही अवसर आत्मबल और तपश्चर्या की परीक्षा के क्षण होते हैं। जब हम अपने व्यक्तिगत दुःख-दरद से ऊपर उठकर समाज के लिए जीना सीखते हैं, तभी वास्तव में प्रज्ञा परिवार का एक अंग होने का गौरव सार्थक होता है।

इतिहास में ऐसे अनगिनत उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने स्वार्थ से ऊपर उठकर अपने जीवन को समाजोपयोगी बना दिया। उनका जीवन ही आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा और संबल बन गया। प्रज्ञा परिवार भी उसी परंपरा को आगे बढ़ाने का एक विनम्र प्रयास है।

आज मानवमात्र के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती है—सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों का संरक्षण। भौतिक साधनों की प्रचुरता के बावजूद भी यदि मनुष्य का अंतःकरण रिक्त है तो उसके जीवन में संतोष और सुख कभी नहीं ठहर सकता। इन दिनों महाकाल द्वारा ऐसा ही आह्वान गूँज रहा है कि हर सजग आत्मा अपनी सामर्थ्य और श्रद्धा के अनुसार समाजोत्थान में सहयोग दे।

जो लोग अपनी आत्मा की पुकार को सुनेंगे, वे ही सच्चे अर्थों में जीवन का सार्थक उपयोग कर पाएँगे। अनुदान केवल आर्थिक सहयोग का नाम नहीं है, बल्कि अपनी संवेदनाओं, समय, श्रम, योग्यता और मनोबल को भी समाजहित में अर्पित करना है।

जीवन का हर क्षण यदि किसी और के सुख और कल्याण में लगाया जाए तो वही सच्चे अर्थों में महादान है। हर व्यक्ति यह संकल्प ले कि वह अपनी दिनचर्या में कुछ समय, कुछ साधन और कुछ ऊर्जा समाज और राष्ट्र-निर्माण के लिए समर्पित करेगा।

यही एक मार्ग है, जिससे अपने जीवन की सार्थकता और आत्मा की तृप्ति संभव है। इस दिशा में किया गया प्रत्येक प्रयास महाकाल के आह्वान का उत्तर है और यही हमारी आत्मा की सच्ची साधना भी है। एक अदृश्य आह्वान आज हम सबके अंतःकरण में गूँज रहा है—'मात्र अपने लिए नहीं, समस्त मानवता के सुख-दुःख के लिए भी जीना होगा।' सुख-सुविधा के लिए बनाए गए संसाधनों और साधनों को अब सामाजिक कल्याण के कार्यों में नियोजित करना ही समय की सच्ची माँग है।

इन दिनों जब अज्ञान, असंयम और स्वार्थपरता से समाज का संतुलन डगमगा रहा है, तब हर सजग व्यक्ति पर यह उत्तरदायित्व और भी अधिक

बढ़ गया है कि वह अपने आचरण और योगदान से इस अंधकार को प्रकाश में बदल दे। युद्ध-निर्माण में वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों ने जैसे अद्भुत योजनाएँ प्रस्तुत कर विश्व का वातावरण बदल दिया, वैसे ही प्रज्ञा परिजनों को भी युगनिर्माण के लिए अपनी रचनात्मकता, परमार्थपरता और संगठनशीलता का परिचय देना होगा।

समय की चुनौती है कि हम सब एक सूत्र में बँधकर राष्ट्र, समाज और मानवता के लिए कुछ ठोस कार्य करें। असंख्य प्रयोगशालाएँ, संस्थान और उद्योग जहाँ भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, वहीं हम सबको चाहिए कि हम सुसंस्कारों और उच्च विचारों का उत्पादन एवं प्रसार करें।

याद रखें कि युग-परिवर्तन केवल नारों और इच्छाओं से नहीं होता, इसके लिए नियोजित प्रयास, सतत साधना और निरंतर कर्मशीलता चाहिए। एकजुट होकर ही हम उस दिव्य ध्येय की ओर बढ़ सकते हैं, जहाँ मानवता का भविष्य सुरक्षित और उज्ज्वल होगा। प्रज्ञा परिवार से जुड़े प्रत्येक साधक और संवेदनशील आत्मा का यह कर्त्तव्य है कि वे समय की पुकार को सुनें और अपने जीवन को इस महान यज्ञ में अर्पित करें।

हमें यह संकल्प लेना होगा कि शिक्षा और प्रशिक्षण के क्षेत्र में सदाचार और नैतिक मूल्यों पर आधारित कार्यक्रम चलाएँ, सामाजिक उत्थान की योजनाओं में अपना योगदान दें और सुसंस्कारों व संस्कृति के संरक्षण में अग्रणी भूमिका निभाएँ, ताकि आने वाली पीढ़ियों को उज्ज्वल भविष्य का मार्ग मिल सके। समय का संदेश स्पष्ट है— 'जो जागेगा, वही पाएगा।' यदि हम सब अपनी सामर्थ्य के अनुसार तन-मन-धन से सहयोग देंगे तो यह युग-परिवर्तन महाकाल की वाणी को प्रत्यक्ष रूप देने वाला होगा। युग-निर्माण कोई दूर का सपना नहीं, यह आज और अभी के प्रयासों पर निर्भर है।

यदि हम संगठित होकर, भावपूर्ण योगदान देंगे तो यह धरती निश्चय ही स्वर्गीय शांति और आनंद का मंदिर बन सकती है। ❑

धर्माचरण व धर्म का अनुशीलन करते हुए अध्यवसाय करना ही ऋषि मुद्गल की दिनचर्या थी। वे मास के प्रथम पक्ष में खेतों में गिरे चावलों को बीनकर एकत्र करते व द्वितीय पक्ष में, उस एकत्रित अन्न को यज्ञ व अतिथि सत्कार में व्यय कर देते।

ऋषि दुर्वासा अपने हजारों शिष्यों के साथ उनकी परीक्षा लेने, अनेकों बार पहुँचे, परंतु प्रत्येक बार वे उनके आतिथ्य से संतुष्ट होकर लौटे। प्रसन्न होकर ऋषि दुर्वासा ने उन्हें जीवित शरीर में स्वर्ग जाने का व वहाँ के भोगों का उपभोग करने का वर दिया।

ऋषि मुद्गल ने उन्हें लेने आए देवदूतों को यह कहकर लौटा दिया कि मैं ऐसे देवदुर्लभ मानवीय शरीर का उपयोग धर्म के पथ पर चलते हुए श्रेष्ठ कार्यों को करते हुए करना चाहता हूँ। मात्र सुख भोगने में मेरी रुचि नहीं है।

कर्मयोगी को कर्मभूमि ही श्रेयस्कर लगती है।

जन्म शताब्दी माताजी की

माँ ने जन्म दिया है हमको, अपना प्यार-दुलार दिया।
जीवन ज्योति जलाई जग में, प्राणों का उपहार दिया॥

माँ से बड़ा न कोई देवता, माँ स्वयं भगवान है,
जीवनदाता ज्ञानप्रदाता, माँ तो बहुत महान है,
माँ ने शिक्षा-दीक्षा देकर, हम पर उपकार किया।
जीवन ज्योति जलाई जग में, प्राणों का उपहार दिया॥

अद्भुत ज्ञान-प्रेरणा देकर, कल्मष-कषाय दूर किया,
व्यवहारिक जीवन जीने का, हमको पावन सूत्र दिया,
जीवन की भटकन हटा, अंतस् का उजगार दिया।
जीवन ज्योति जलाई जग में, प्राणों का उपहार दिया॥

नहीं दे सका कोई जग में, वह गुरु ज्ञान प्रदान किया,
अनुपम अमृत हमें पिलाया, अगणित अजस्त्र अनुदान दिया,
काट-छाँटकर माली जैसा, जीवन में सुखद सुधार किया।
जीवन ज्योति जलाई जग में, प्राणों का उपहार दिया॥

जन्म शताब्दी माताजी की, गौरवपूर्ण मनाएँगे,
संदेशा हम शांतिकुंज का, गली-गली पहुँचाएँगे,
ऋषियुग्म प्राणों से प्यारे, आदर्शों से उनने प्यार किया।
जीवन ज्योति जलाई जग में, प्राणों का उपहार दिया॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड-16

मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य

पंचतत्त्वों से बनी काया क्षणभंगुर है, किंतु आत्मा अमर है । मनुष्य में सदैव ही यह उत्सुकता रही है कि जन्म के पूर्व आत्मा कहाँ रहती है और मरण के बाद आत्मा कहाँ चली जाती है । इसकी जानकारी के लिए आप जानना चाहेंगे—

★ मरण, सृजन का अभिनव पर्व है।

★ मृत्यु के बाद आत्मा की स्थिति ।

★ भूत, प्रेत और पितर ।

★ मनुष्य का कर्मफल ।

★ पुनर्जन्म का स्वरूप ।

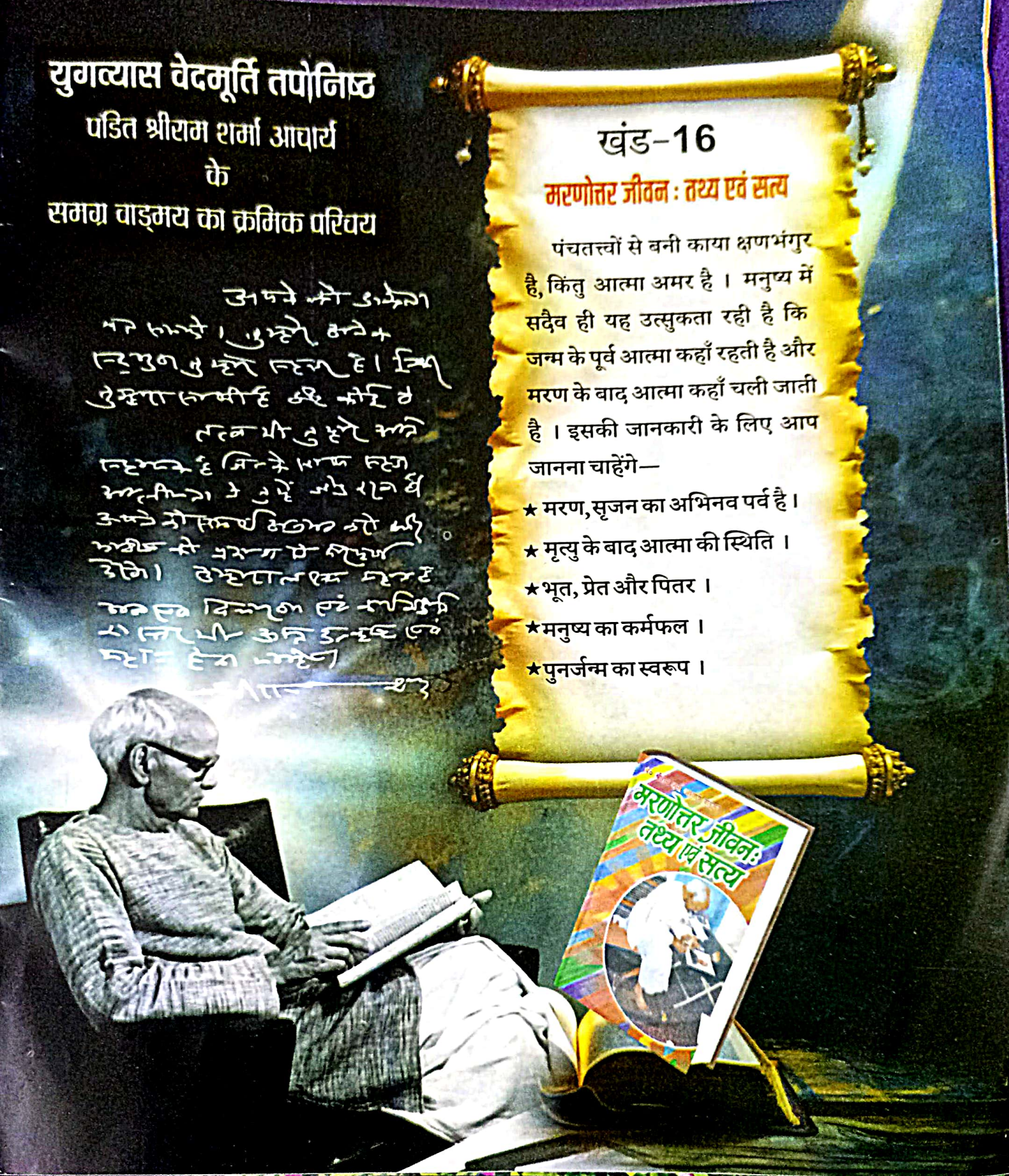

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 3 / 2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

शताब्दी समारोह : परम वंदनीया माता भगवती देवी शर्मा जी एवं अखंड दीप शताब्दी वर्ष का आयोजन अविस्मरणीय और ऐतिहासिक उपलब्धियों के साथ संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ई-मेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org